ऋग्वेद यजुर्वेद

ओ३म्

वेद स्वाध्याय विशेषांक

# पवमान

(मासिक)

मूल्य: ₹ 15 (मासिक)
₹150 (वार्षिक)

वर्ष : 28 श्रावण–भाद्रपद वि0स0 2073 अगस्त 2016 अंक : 08

मुद्रक: सरस्वती प्रेस, देहरादून वजन: 50 ग्राम

## स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं

## वैदिक साधन आश्रम तपोवन,

नालापानी, देहरादून–248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

## 26 जून 2016 को देहरादून में सम्पन्न
## मधुर पारिवारिक सम्बन्ध एवं श्रेष्ठ सन्तान निर्माण कार्यशाला की कुछ झलकियाँ

नागरिक कल्याण विकास ट्रस्ट द्वारा सम्मानित डॉ. रामेश्वर पाण्डेय, चैस्ट रोग विशेषज्ञ

श्री सविनय शर्मा, छात्र, सेंट जोसेफ ऐकेडमी को प्रतिभा सम्मान से सम्मानित करते हुए ट्रस्ट के अधिकारीगण

कु. खुशबू शर्मा, छात्रा, कैंब्रियन हॉल को प्रतिभा सम्मान से सम्मानित करते हुए ट्रस्ट के अधिकारीगण

ओ३म्

# पवमान

वर्ष–28 अंक–8

श्रावण–भाद्रपद 2073 विक्रमी अगस्त 2016

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,117 दयानन्दाब्द : 192

★

–: संरक्षक :–

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती

★

–: अध्यक्ष :–

श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री

मो. : 09810033799

★

–: सचिव :–

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

–: आद्य सम्पादक :–

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

–: मुख्य सम्पादक :–

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

–: सम्पादक मण्डल :–

अवैतनिक

आचार्य आशीष दर्शनाचार्य

मनमोहन कुमार आर्य

★

–: कार्यालय :–

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून–248008

दूरभाष : 0135–2787001

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com


## विषयानुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| सम्पादकीय | कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री | 2 |
| वेदामृत | म० दयानन्द सरस्वती यजुर्वेदभाष्य | 3 |
| आवश्यक क्यों है वेद का स्वाध्याय | कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री | 4 |
| 'परम दयालु, कृपालु और हमारा हितैषी... | मनमोहन कुमार आर्य | 8 |
| रोगों का कारण और चिकित्सा | म० प्रभु आश्रित महाराज | 11 |
| वैरागी राजकुमार | पं० शिवशर्मा, उपदेशक | 13 |
| स्वातन्त्र्याभिलाषी–राष्ट्रभक्त | डॉ० सुधीर कुमार आर्य | 14 |
| यजुर्वेद में पुरुषार्थ चतुष्टय तथा यज्ञ... | डॉ० भवानीलाल भारतीय | 15 |
| विद्ययाऽमृतमश्नुते | स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती | 18 |
| सचिव की कलम से | | 19 |
| वेदों में विज्ञान के कुछ अद्भुत कारनामें | डॉ० रामनाथ वेदालंकार | 20 |
| मज़हबी पुस्तकें तथा वेद | आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' | 25 |
| फकीरी नुस्खे | | 27 |
| मधुर पारिवारिक संबंध एवं श्रेष्ठ सन्तान... | मनमोहन कुमार आर्य | 29 |


## वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

| दान हेतु बैंक खाते का नाम | बैंक का नाम व पता | बैंक अकाउन्ट नं. | IFSC Code |
|---|---|---|---|
| आश्रम को दान देने के लिये | | | |
| 1. "वैदिक साधन आश्रम" | कैनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून | 2162101001530 | CNRB0002162 |
| पवमान पत्रिका शुल्क | | | |
| 2. "पवमान" | कैनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून | 2162101021169 | CNRB0002162 |
| सत्संग भवन एवं आरोग्य धाम के निर्माण में सहयोग हेतु | | | |
| 3. "वैदिक साधन आश्रम" | ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स 17 राजपुर रोड, देहरादून | 00022010029560 | ORBC0100002 |
| तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये | | | |
| 4. 'तपोवन विद्या निकेतन" | यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून | 602402010003171 | UBIN0560243 |


### पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000 / – प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000 / – प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000 / – प्रति माह

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

# सम्पादकीय

# सर्वोत्तम कार्य है वेद का स्वाध्याय

समस्त जीवधारियों में मनुष्य को श्रेष्ठ माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हे पुरुष, यह जीवन उन्नति करने के लिए है, अवनति करने के लिए नहीं। परमेश्वर ने मनुष्य को दक्षता और कार्यकुशलता से परिपूर्ण किया है। मानव जीवन का उद्देश्य धर्मपूर्वक कर्म करते हुए अर्थ या धन–सम्पत्ति कमाना और धर्मपूर्वक कामनाएं रखते हुए उनकी पूर्ति करना है। साथ ही धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए आत्मिक उन्नति प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करना है। इसके लिए ईश्वर ने उसे बुद्धि, विवेक और दक्षता प्रदान करते हुए विशेष शारीरिक रूप प्रदान किया है। उसके शरीर में आठ चक्र और नव द्वारों की स्थिति तथा सबसे ऊपर मस्तिष्क रूपी राजा का नियंत्रण होने से वह समस्त कार्यों को तरीके से संचालित करता है। पशुओं अदि अन्य प्राणियों में मस्तिष्क व चक्रों की स्थिति पृथ्वी के समान्तर होने से उनकी अधोगति रहती है। मनुष्य इसके विपरीत ऊर्ध्वगामी होता है। इससे विचारों की परिपक्वता और ज्ञान की उत्कृष्टता आसानी से प्राप्त कर प्रगति की ओर बढ़ता है। मनुष्य योनि कर्म के साथ योग योनि है जबकि अन्य जीवों की केवल भोग योनि है, इनमें मस्तिष्क में कोई दक्षता न होने से भी उन्नति की कोई गुंजाइस नहीं रहती है। परमेश्वर ने मनुष्य को केवल उन्नति के लिए ही बनाया है और यदि हम इस अवसर का उचित लाभ न उठाकर फिर से अधोगति प्राप्त कर अन्य योनियों में जन्म लेते हैं तो उसके लिए हम स्वयं ही दोषी माने जायेंगे। इसलिए हमें व्यक्तिगत रूप से शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिए। सामाजिक रूप से सदाचार करते हुए सांस्कृतिक उन्नति करनी चाहिए। ईश्वर की यह अनुकम्पा है कि उसने हमें मनुष्य शरीर दिया है। हमें इस योनि में आने का लाभ प्राप्त करना है तो ईश्वर अनुभूति के लिए परोपकारिता, दयालुता आदि गुणों को धारण करते हुए जीवमात्र में ईश्वर की छवि देखने की दृष्टि पैदा करनी होगी। प्रत्येक साधक चाहता है कि उसे सुख की प्राप्ति हो। ऐसा सुख भौतिक वस्तुओं में नहीं है। यह तो ईश्वर की वास्तविक अनुभूति होने पर ईश्वर से ही प्राप्त हो सकता है, जिसके लिए यम, नियम आदि योग के आठों अंगों की साधना करते हुए समाधि लगानी पड़ती है। ज्ञान, भक्ति और कर्म ऐसे उपाय हैं, जिनसे पात्रता में वृद्धि की जा सकती है। जिस साधक को उसकी पात्रता को देखते हुए परमेश्वर चयनित कर लेता है, उसे ही वह प्राप्त हो पाता है। ज्ञानमार्ग का पथिक स्वाध्याय के द्वारा ही इस ओर आगे बढ़ सकता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि स्वाध्याय मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है। जिसमें हम बुद्धि, विवेक, दक्षता और भक्ति से न केवल भौतिक उन्नति कर सकते हैं, अपितु आध्यात्मिक रूप से भी उन्नति कर मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। श्रावणी पूर्णिमा अथवा श्रावण मास की पंचमी से स्वाध्याय का उपक्रम होता है। सभी सुधि पाठकों से निवेदन कि वे इस पावन पर्व पर दैनिक वेद स्वाध्याय का व्रत लेकर आजीवन उसका पालन करते रहेंगे। यह अंक आपकी सेवा में वेद–स्वाध्याय विशेषांक के रूप में प्रस्तुत है।

**कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री**

# ❁ वेदामृत ❁

**त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।**
**यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्।। यजु । 3। 62।।**

**पदार्थ**– हे जगदीश्वर! आप **(यत्)** जो **(देवेषु)** विद्वानों के वर्तमान में **(त्र्यायुषम्)** ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो **(जमदग्नेः)** चक्षु आदि इन्द्रियों का **(त्र्यायुषम्)** शुद्धि, बल और पराक्रमयुक्त तीन गुण आयु और जो **(कश्यपस्य)** ईश्वरप्रेरित **(त्र्यायुषम्)** तिगुणी अर्थात् तीनसौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस शरीर, आत्मा और समाज को आनन्द देने वाले **(त्र्यायुषम)** तीन सौ वर्ष से अधिक आयु को (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिए। ।62।।

**भावार्थः**– इस मन्त्र में चक्षुः सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है, ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इस पदवी की चार वार आवृत्ति होने से तीन सौ वर्ष से अधिक चार सौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है। इसकी प्राप्ति के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है सो प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये– हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें। 62।।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

**तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।। अ. 10। 8। 1**
उस सबसे बडे परमात्मा के लिए नमस्कार हो।

**हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।। य. 40 । 17**
सत्य का स्वरूप सुनहरे चमकीले ढकने से ढका हुआ है।

**न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ।। ऋ. 10 । 152 । 1**
ईश्वर के भक्त को न कोई नष्ट कर सकता है न जीत सकता है।

# आवश्यक क्यों है वेद का स्वाध्याय

**–कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री**

महर्षि दयानन्द सरस्वती की यह एक बड़ी देन है कि उन्होंने भूले हुए वेदों का फिर से परिचय कराया। वेदज्ञान को महर्षि ने समस्त विद्याओं का मूल बताया है। स्वधर्म के महत्व पर उनके द्वारा अत्यन्त बल दिया गया है। उनके द्वारा धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए पक्षपात रहित न्याय और सबका हित करना धर्म है। यह धर्म प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध किए जाने योग्य और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के मानने योग्य हैं। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में धर्म की विस्तृत व्याख्या करते हुए इसका अर्थ सत्य, न्याय, सहिष्णुता ,परोपकार, संयम, तप और दया आदि किया गया है। साथ ही इन्हें धर्म के सार्वभौम सिद्धान्त भी बताया गया है। वेद में मनुष्यों के लिए विधि अर्थात् करने योग्य और निषेध अर्थात् न करने योग्य बातों का वर्णन, ईश्वर प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और मनुष्य के कल्याण के लिए आवश्यक ज्ञान बीज रूप में दिया गया है, इसलिए इसके पालन में किसी को भी कोई शंका या कठिनाई नहीं होनी चाहिए। हम वेद की मान्यताओं के अनुसार प्रतिपादित वैदिक धर्म का अध्ययन करते हुए यह विचार करेंगे कि क्या आर्यसमाज के सभी सिद्धान्त वेदों में प्रतिपादित मान्यताओं पर आधरित हैः–

**१–वेद की आवश्यकता–**

महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि हम जीव लोगों के लिए ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हम पर कृपा है। महर्षि वेदोत्पत्ति का प्रयोजन बताते हुए कहते हें कि परमेश्वर हम लोगों के माता–पिता के समान है। जैसे सन्तानों के ऊपर पिता ओर माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें, वैसे ही ईश्वर सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपा दृष्टि सदैव रखता है, इससे ही वेदों का उपदेश हम लोगों के लिए किया है। जो परमेश्वर वेदविद्या का उपदेश मनुष्यों के लिए नहीं करता तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती, उसके विना परम आनन्द भी किसी को न होता। जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे–छोटे पदार्थ रचे हैं सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली, सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिए क्यों न करता? क्योंकि ये जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्या प्राप्ति से होने वाले सुख से हजारवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता। ऐसा सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता?इससे निश्चय करके यह जानना चाहिए कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं।

**२–तीन अनादि पदार्थ–** ईश्वर जीव और जगत् ये तीन पदार्थ अनादि हैं। महर्षि ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों के प्रमाणों के साथ कहते हैं कि ब्रह्म और जीव चेतनता और पालनादि

सौजन्य से– **RIKKI PLASTIC (PVT.) LTD.**
(ISO/TS 16949:2002 Registered)
Plot No. B-5, Sector-59, Opp. JCB India Ltd., Ballabgarh, Faridabad, Haryana (INDIA)
Tele : 0129-4154941-42, Telefax : 0129-4154950

गुणों से सदृश व्याप्य व्यापकभाव से संयुक्त परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं ओर वैसा ही अनादि मूलरूप कारण ओर शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल हो कर प्रलय में छिन्न–भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव ओर ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को भोगवाता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप, तीनों अनादि हैं। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि अनादि सनातनरूप प्रजा के लिए वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है। (ऋ0 १/१६४/२०), (यजु0 ४०/८)

**३–मानव निर्माण**– इस संसार में मनुष्य ही को कर्म–योनि मिली है और वह चिन्तनशक्ति से युक्त है। निरुक्त में कहा गया है–''मत्वा कर्माणि सीव्यति''। अतः वेदप्रतिपादित समस्त ज्ञान, कर्मकाण्ड और उपासना–मार्ग मनुष्य के लिए ही है। वही ब्रह्म–साक्षात्कार का अधिकारी भी है। अन्य प्राणि समूह तो 'भोग–योनि' में जन्म लेने के कारण स्वतन्त्र ज्ञान क्रिया से रहित, भय–शोक आदि प्रवृत्तियों से विवश होकर विभिन्न कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। सभी प्रकार के निर्माणों के लिए उत्तम विधि अपनायी जाती है परन्तु मनुष्य के निर्माण के लिए कोई भी विधि नहीं अपनायी जाती है। प्राचीन वैदिक कालीन ऋषियों ने मनुष्य को उत्कृष्ट बनाने हेतु संस्कारों का प्राविधान किया है। उत्तम संस्कारों को प्राप्त करके ही श्रीराम, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, धर्मात्मा युधिष्ठिर, स्वामी दयानन्द आदि महापुरुषों का निर्माण हुआ था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि संसार का ताना–बाना तनता हुआ प्रकाश के पीछे जा। बुद्धि से बनाये, परिष्कृत किये हुए ज्योतिर्मय, प्रकाशयुक्त रक्ष मार्गों की रक्षा कर, निरन्तर ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करने वालों के उलझन रहित कर्मों को विस्तृत कर, मनुष्य बन, देवों के हितकारी जन को, सन्तान को उत्पन्न कर।

**तन्तुं तन्वन् भानुमन्विहि ज्योतिश्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।**

**(ऋ0 १०/५३/६)**

धार्मिक, सुसभ्य और दयालु मनुष्यों के निर्माण के लिए संस्कार करने वाले विद्वानों की आवश्यकता है। संस्कारों के द्वारा ही वास्तव में मानव कहलाने योग्य व्यक्तियों का निर्माण सम्भव है।

**४–वैदिक दर्शन का आधार ऋत और सत्य**– प्राचीन महर्षियों ने सृष्टि के रहस्यों को समझने की अटूट जिज्ञासा और अपनी अनुभूति के बल पर सृष्टि के मूल में विद्यमान 'ऋत–तत्त्वों' का अन्वेषण किया था। वैदिक भाषा में यही ऋत कहलाता है। जड़ या चेतन सब में 'ऋत' का एक तन्तु ओत–प्रोत है। चन्द्र, सूर्य, ग्रह–उपग्रह सभी ऋत पन्थ के अनुयायी हैं।

**५–ईश्वर एक है और उसका निज नाम ओ३म् है**– महर्षि सत्यार्थप्रकाश के सातवें सम्मुलास में लिखते हैं कि चारों वेदों में कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, कितु यह लिखा है कि ईश्वर एक है। वह, यह भी लिखते हैं कि दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण देवता कहे जाते हैं। जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।

**६–ईश्वर का निज व सर्वोत्तम नाम ओ३म् है**– 'ओ३म्'– ओंङ्कार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम

है, क्योंकि इसमें अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है, इस नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे– अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य ओर प्रज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर के ही हैं।

**७–ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप**– महर्षि के अनुसार ''जो ज्ञानादि गुण वाले का यथायोग्य सत्कार करना है उसको पूजा कहते हैं।'' परमेश्वर की पूजा की क्या विधि हो सकती है?वेद कहता है कि परमात्मा आत्मिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक आदि बलों का देने वाला है। इसी कारण से सकल देव एवं समस्त विश्व उसकी उपासना–पूजा– सेवा सत्कार, सम्मान करता है। पूजा का प्रकार क्या हो?उसकी आज्ञा के अनुसार चलना ही उसकी पूजा है क्योंकि इसमें पूजक का भी कल्याण है। ईश्वर की आज्ञाओं के अनुकूल चलने में ईश्वर की पूजा है। ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना ओर उपासना करना है।

**८–जीवात्मा, पुनर्जन्म, कर्मफल–(१) जीवात्मा**– महर्षि के अनुसार जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणवाला है, वह जीव कहलाता है। महर्षि ने आत्मा को चेतन गुण वाला वर्णित किया है। जीवात्मा स्वरूपतः अनादि, ज्ञानऔर प्रयत्नगुणों वाला तथा प्रवाह से संयोग–वियोग के कारण, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, सांयोगिक है अर्थात् ये चारों गुण संयोग से पैदा होते हैं, अतः वियोग से नष्ट हो जाते हैं। इसी का नाम प्रवाह है। साथ ही जीव आत्मा के कर्म भी प्रवाह से अनादि हैं क्योंकि वह नये–नये शरीर धारण करता और छोड़ता रहता है।

श्वेताश्वरोपनिषद् में जीवात्मा के बारे में कहा गया है–

**बलाग्रशतभागस्य भातधा कल्पितस्य च भागो जीवः सीविज्ञेयः।**

अर्थात् बाल के अग्रभाग का सौवाँ भाग, पुनः उसका भी सौवाँ भाग जितना हो, उसके जितना अणु बताया है। अथर्ववेद में कहा गया है–

**बृहस्पतिर्मे आत्मा नृमणा नाम हृद्यः।**

अर्थात् आत्मा अणु है, अतः इसका निवास हृदय में है, यह बात अथर्ववेद ने स्पष्ट की है।

**(२) पुनर्जन्म**– पुनर्जन्म की अवधारणा कर्मफल के सिद्धान्त पर आधारित है। हमारा यह जन्म पिछले जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्मों का विपाक है। अगले जन्म का आधार इस जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्म होंगे। पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानने पर इस लोक में प्राप्त होने वाले फलों को समझना सम्भव नहीं होता कि ये फल मनमाने या दण्डस्वरूप तो नहीं हैं। पूर्वजन्म न मानने पर ईश्वर में वैषम्य और नृर्घृण्य दोष मानने पड़ेंगे। जो जीव जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल प्राप्त करता है। अतः ईश्वर  वैषम्य और नृर्घृण्य दोष से युक्त नहीं है। संस्कार के बिना समृति नहीं होती है और मृत्यु के स्मरण के बिना मृत्यु से भय भी नहीं लगता। अतः प्राणिमात्र को जो मृत्यु भय लगता है, उससे पूर्वजन्म का अनुमान किया जा सकता है। पूर्वजन्म के अनुसार दुःख सुख देने से परमेश्वर न्यायकारी सिद्ध होता है। महर्षि ने ईसाई और इस्लाम मतों द्वारा पुनर्जन्म न मानने पर कड़ी टिप्पणी की है।

**(३) कर्मफल**– ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था

उसके सार्वभौम नियमों के द्वारा संचालित होती है। यह व्यवस्था समस्त जीवों के लिए हर काल और हर देश में समान रहती है। इस व्यवस्था में कभी भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यह व्यवस्था जैसे पूर्व कल्पों में थी , वैसे ही वर्तमान कल्प में भी है और आगे आने वाले कल्पों में भी रहेगी। ईश्वर की व्याख्या करते हुए महर्षि आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं ''जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र, अनादि, अनन्त आदि सत्य गुणवाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है। जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन, और विनाश करना, सब जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है, उसको ईश्वर कहते हैं। ईश्वर की इस व्याख्या में महर्षि ने यह बताया है कि ईश्वर का यह कर्म हे कि वह जीवों को पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाए।

९– **वैदिक आचारशास्त्र**–वेदों में विशुद्ध मानवतावाद का संदेश है। इसमें मनुष्य के विकास के लिए, उसके आत्मिक बल के लिए बहुत उच्चकोटि के आचारशास्त्र का संकलन किया गया है। वैदिक संस्कृति सदाचार को अन्य उपादानों से अत्यधिक महत्त्व प्रदान करती है। वैदिक आचारशास्त्र, सत्पुरुषों का आचरण है। जिस कार्य को करने से अंतरात्मा आनंदित हो ओर उसमें उत्साह की अनुभूति हो वह पवित्र व नैतिक कार्य सदाचार है। सदाचार और नैतिकता का अंतरंग सम्बन्ध है। वेद कहता है ''ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः'' अर्थात् दुराचारी व्यक्ति ऋत के पथ को पार नहीं कर सकता है। यह भी कहा गया है ''स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानःअर्थात् स्वर्ग या ज्योति की ओर ले–जानेवाला देवयान–मार्ग सुकृति अर्थात् सदाचारी व्यक्ति के लिए ही हैं।

१०– **पुरुषार्थ चतुष्टय और मोक्ष**–धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष ये चार 'पुरुषार्थ चतुष्टय के नाम से जाने जाते हैं। धर्म की परिभाषा लेख के आरम्भ में कर दी गई है। धर्मपूर्वक धन कमाना धर्म है और धर्म पूर्वक इच्छाएं रखना काम है। चतुर्थ पुरुषार्थ का नाम है– मोक्ष। इसे परम पुरुषार्थ भी कहते हैं। समस्त वेद, शास्त्र, महान् से महान् ज्ञानी, महर्षि, सन्त, मुनि आदि महापुरुषों ने संसार भर के एक से एक सुखों की छानबीन करके, उन्हें खूब अच्छी तरह से परख करकें, अन्त में बिना मतभेद के सभी ने एक ही स्वर से यही अटल सिद्धान्त सुस्थिर कर दिया है कि सांसारिक दुःखरूपी प्रचण्ड सूर्य के ताप से जिनका अन्तःकरण सन्तप्त हो रहा है, उन पुरुषों को मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया को छोड़कर और कहां सुख मिल सकता है? इसलिए मोक्ष ही समस्त पुरुषार्थों ओर सुखों का सम्राट् है। इसकी प्राप्ति किसी–किसी विरले भाग्यशाली ही को हो पाती है। अधिकांश लोगों के लिए तो यह आदर्श मात्र है।

मोक्ष का अर्थ–मोक्ष का अर्थ है–''मुच्यते सर्वैर्दुःखबन्धनैर्यत्र स मोक्षः।''अर्थात् जिस पद को पाकर जीव आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि सम्पूर्ण दुःख बन्धनों से मुक्त हो जाता है– उसे मोक्ष कहते हैं। इसका अर्थ होता है प्राणी का बन्धनों से छूट जाना।

आर्यसमाज के छठे नियम के अनुसार हमारा उद्देश्य संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है जो हम उपरोक्त वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर ही कर सकते हैं। वेदों का स्वाध्याय किए बिना न तो इन सिद्धान्तों की भली भांति जानकारी हो सकती है और न ही हम आत्मिक उन्नति कर सकते हैं, इसलिए वेद का स्वाध्याय परमावश्यक है।

ओ३म्

# 'परम दयालु, कृपालु और हमारा हितैषी परमेश्वर'

—मनमोहन कुमार आर्य

यदि हम यह विचार करें कि संसार में हमारे प्रति सर्वाधिक प्रेम, दया, सहानुभूति कौन रखता है, कौन हमारे प्रति सर्वाधिक सम्वेदनशील, हमारे सुख में सुखी व दुःखी में दुखी, हमारे प्रति दया, कृपा व हित की कामना करने वाला है, तो हम इसके उत्तर में अपने माता—पिता, आचार्य और परमेश्वर को सम्मिलित कर सकते हैं। इसमें कहीं कोई अपवाद भी हो सकता है। हम जब इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें मनुष्य वा मनुष्य शरीर में निवास कर रही जीवात्मा का सर्वाधिक हितैशी जो इसे प्रेम करने के साथ इस पर मित्र भाव रखकर असीम दया व कृपा करता है, वह सत्ता एकमात्र परमेश्वर ही है। अतः हमें उसके प्रति उसी के अनुरूप भावना के अनुसार प्रेम, मित्रता व कृतज्ञता का व्यवहार करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं करेंगे, संसार में अधिकांश अज्ञान व अन्य कारणों से ऐसा ही करते हैं, तो हम कृतघ्न होंगे जिस कारण हमें जन्म—जन्मान्तरों में अपने इस मूर्खतापूर्ण आचरण व व्यवहार की भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। अतः हमें अपने इस जीवन में प्रतिदिन समय निकाल कर इस प्रश्न पर अवश्य विचार करने के साथ इसका समाधान खोजना चाहिये।

पहला प्रश्न है कि ईश्वर हमारा परम हितैषी किस प्रकार से है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें ईश्वर व आत्मा के स्वरुप को जानना होगा। ईश्वर का स्वरूप हम आर्यसमाज के पहले व दूसरे नियम को पढ़ व समझकर जान सकते हैं। पहला नियम है कि '**सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।**' दूसरा नियम है कि '**ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरुप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।**' पहले नियम में समस्त विद्या व समस्त सांसारिक पदार्थों, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी व पृथिवीस्थ सभी पदार्थों, का आदि मूल परमेश्वर को कहा गया है। जहां तक विद्या का प्रश्न है, यह परमेश्वर में सदा सर्वदा अर्थात् अनादिकाल से विद्यमान है। इस विद्या का मनुष्यों के लिए जो उपयोगी भाग है उसे ईश्वर बीज रुप में चार वेदों के माध्यम से सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा प्रदान करता है। वेदों के मन्त्रों में जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, उनका अर्थ व उदाहरणों सहित ज्ञान भी परमेश्वर उन ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को कराता है। अतः मनुष्यों को प्राप्त होने वाली समस्त विद्याओं का आदि मूल परमात्मा ही निश्चित होता है जिसका आधार वेद है। मनुष्य समय समय पर अपने ऊहापोह व चिन्तन मनन आदि कार्यों से उसका विस्तार कर उससे लाभ लेने के लिए नाना प्रकार के

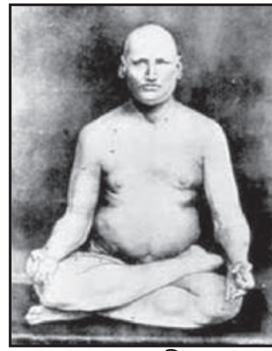

सुख–सुविधाओं के साधन आदि बनाते रहते हैं। हमें लगता है कि मनुष्य तो केवल अध्ययन, चिन्तन–मनन व पुरुषार्थ करते हैं परन्तु उनके मस्तिष्क में जो नये विचार व प्रेरणायें होती हैं वह ईश्वर के द्वारा उनके पुरुषार्थ आदि के कारण होती हैं। इसी प्रकार से ज्ञान–विज्ञान का विस्तार होकर आज की स्थिति आई है। आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के इतर स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यह सब बातें वेदों के आधार पर निश्चित की हुईं हैं। वेदों में इनका यत्र–तत्र वर्णन पाया जाता है। इसमें हम यह भी जोड़ सकते हैं कि जीवात्मा को उसके जन्म–जन्मान्तरों के अवशिष्ट कर्मों का सुख–दुःख रूपी फल प्रदान करने के लिए ही ईश्वर इस सृष्टि को बनाकर उसमें मनुष्यों व अन्य प्राणियों को उत्पन्न करता है। मनुष्य व इतर प्राणी योनियां भी जीवात्मा के पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर ही उन्हें परमेश्वर से प्राप्त होती हैं। ईश्वर ने जीवात्माओं के लिए इस सृष्टि को बनाया, आदि सृष्टि में वेदों का ज्ञान देकर मनुष्यों को उनके कर्तव्य–अकर्तव्य वा धर्म–अधर्म से परिचित कराया और जीवात्मा को जन्म देकर उन्हें नाना व विविध प्रकार के सुखों से पूरित किया, इन व ऐसे अनेक उपकारी कार्य करने के लिए ईश्वर सभी जीवात्माओं व मनुष्यों का परम हितकारी व हितैषी सिद्ध होता है। **जीवात्मा का स्वरुप भी वेदों में तर्कपूर्ण शब्दों में बताया गया है जो कि अनादि, अविनाशी, अनुत्पन्न, अमर, नित्य, सूक्ष्म, अल्पज्ञ, एकदेशी, जन्म-मरण वा सुख-दुख रूपी कर्म-फल के बन्धनों में बन्धा हुआ है। असत्य व अधर्म का पूर्णतः त्याग कर जीवात्मा जन्म-मरण के बन्धनों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करता है।**

मनुष्य का शरीर संसार के सभी प्राणियों के शरीरों में सर्वोत्तम है। इसकी रचना अद्भुत है। मनुष्य वा अन्य प्राणियों के शरीरों की रचना का कार्य ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता। आईये, इस मानव शरीर का वर्णन भी ऋषि दयानन्द के शब्दों में देखे लेते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम् समुल्लास में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि **'(प्रलय की अवधि समाप्त होने के बाद) जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा (सत्व, रज व तम गुणों वाली कारण प्रकृति के) परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उस को प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उस का नाम महत्तत्व और जो उस से कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार और अहंकार से भिन्न-भिन्न पांच सूक्ष्मभूतः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, और गुदा ये पांच कर्म-इन्द्रियां हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिन को हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की औषधियां, वृक्ष आदि, उन से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी (स्त्री-पुरुष संसर्ग द्वारा) नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बना कर उन में जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।'**

इसी क्रम में ऋषि दयानन्द आगे लिखते हैं कि **'देखो ! (ईश्वर ने) शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिस को विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला**

**का स्थापन, रुधिरशोधन, प्रचालन, विद्युत्, का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम, नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला, कौशल, स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है?'**

इस प्रकार ईश्वर ने मनुष्य का शरीर बनाकर हम पर जो उपकार किया है, उसका हम किसी प्रकार से भी प्रतिकार वा ऋण, दया, कृपा आदि से उऋृण नहीं हो सकते। हम ईश्वर के इन सब उपकारों के लिए कृतज्ञ हैं और यही भाव जीवन भर बना रखें तभी हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। कृतघ्न मनुष्य को मनुष्य नहीं कहा व माना जा सकता। इतना ही नहीं, वेदों व वैदिक साहित्य का अध्ययन कर हम अपनी इस मनुष्य योनि में संसार के यथार्थ स्वरूप को जान सकते हैं व अर्जित ज्ञान से ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ सहित परोपकार, सेवा, दान आदि कार्यों को करके जन्म–मरण के दुःखों से मुक्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक जीवन का अवलम्बन कर हम मुक्ति को प्राप्त कर 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक बिना जन्म व मृत्यु के ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त कर उसके आनन्द का भोग कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन के उदहारण से मनुष्यों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की शिक्षा दी और इसके साथ सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ लिख कर मोक्ष के सभी साधनों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। मोक्ष के साधनों को व्यवहार में लाना असम्भव नहीं तो कुछ असुविधाजनक तो है ही। इसी को धर्म व तप कहते हैं और यही हमारे भावी जन्म को सुधारने के साथ हमें मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। मोक्ष में असीम सुख प्राप्त करना ही प्रत्येक जीवात्मा का लक्ष्य है। यह भी एक तथ्य है कि हम सभी जीवात्मायें अनेक बार मोक्ष में रहे हैं और इसके अतिरिक्त अनेक बार अधर्म के कार्य करके नाना व प्रायः सभी पाप योनियों में रहकर हमने अनेक दुःखों को भी भोगा है। हमें यह भी जानना है कि माता-पिता और आचार्य हमारे मित्रवत् हितकारी एवं कृपालु हैं परन्तु इन्हें प्रदान कराने वाला भी वही एक ईश्वर है। यह लोग भी हमारी ही तरह ईश्वर के कृतज्ञ हैं। अतः हम इन सभी के भी ऋणी हैं परन्तु ईश्वर का ऋण सबसे अधिक है। हमें इन सबके ऋणों से उऋण होने के लिए प्रयास करने हैं।

ईश्वर का सत्य स्वरुप वेद, वैदिक साहित्य व महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में वर्णित है। इसे पढ़कर ईश्वर के यथार्थ स्वरूप और उसके गुण-कर्म-स्वभाव को विस्तार से जाना जा सकता है। इससे ईश्वर की जीवों पर दया, कृपा व हित की कामनाओं के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करके उसकी स्तुति, प्रार्थना उपासना आदि के द्वारा अपने मानव जीवन को उन्नत बनाने के साथ भावी जन्मों में सुखों की प्राप्ति के लिए धर्म व सुखदायक कर्मों की पूंजी संचित की जा सकती है जो जन्म जन्मान्तरों में हमें मोक्ष प्रदान करा सकती है। आईये ! ईश्वर की दया, कृपा व हितकारी भावना के प्रति अपनी नित्यप्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वेद एवं वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय सहित ईश्वर की ऋषियों के विधान के अनुसार स्तुति प्रार्थना व उपासना करने का संकल्प लेकर उसे अपने जीवन में चरितार्थ करें। इसी से हमारा मानव जीवन सफल हो सकता है। नान्यः पन्था विद्यते अयनायः। इति।

# रोगों का कारण और चिकित्सा

—म० प्रभु आश्रित महाराज

पाठकवृन्द! गत माहों में आप जो कुछ पढ़ आए हैं उसमें से कतिपय मुख्य—मुख्य बातें यदि आपकी स्मृति के लिए दोहरा दी जाएं तो अगले सम्वाद को समझना आपके लिए सुगम हो जाएगा। यह बताया जा चुका है कि दुःख का मूल पाप है। पाप ही धीरे—धीरे और समय आने पर दुःख का कारण बन जाता है।

## भूल तथा पाप में क्या भेद है?

भूल का फल इसी जन्म में मिल जाता है। अनेक कर्म ऐसे होते हैं, जिनका फल इस जन्म में नहीं मिलता। **कर्म तीन प्रकार के होते हैं।** इन कर्मों के फल का भुगतान कैसे होता है? कौन—कौन से कर्मों का फल नष्ट किया जा सकता है?

पिता—पुत्र के सम्वाद में अब पुत्र का सवाल यह था कि क्या यह भी पता लग सकता है कि अमुक फल किस कर्म का बदला है, और अमुक किस का। अपने सुपुत्र की प्रेरणा से पिता ने कहा :

## प्राकृतिक कारण

पिता— अब तुम अपने ही केस को अपने सामने रखो। जब तुम्हें खांसी हुई थी तब तुम भी यह समझते थे कि खांसी हुई है और क्यों हुई है? जब किसी ने कारण पूछा तो तुमने तुरन्त कह दिया कि 'मैंने कुछ खट्टा खा कर ऊपर से पानी पी लिया था, इससे खांसी हो गई', परन्तु किसी को तुम्हारी खांसी का यथार्थ हाल ज्ञात नहीं हुआ और खांसी दिन—प्रतिदिन बढ़ती ही गई। फिर ज्वर हो गया। जब हकीम ने देखा तो कहा कि **पित्त** का विकार है। जिगर पर गर्मी बैठ गई है। उसने वैसा ही इजाज किया। जब तुम्हें कुछ आराम न हुआ अन्य डॉक्टर को दिखाया गया तो उसने कहा **जलोदर होने वाला है।** जब उसकी चिकित्सा से कुछ लाभ न हुआ और एक अन्य बड़े सुयोग्य, प्रसिद्ध तथा अनुभवी डॉक्टर ने बड़े ध्यान से आधुनिक यन्त्रों द्वारा देखा तो उसने कहा कि तपेदिक हो गया है। आठ मास से रोग का बीज उत्पन्न हुआ। पहले शरीर में बल था, शक्ति थी, कुछ अनुभव न हुआ जब कि शनैः—शनैः यह शक्ति रोग का सामना करते—करते थक गई, दुर्बल हो गई। रोग के कीटाणु बढ़ते गए तो रोग अपना नमूना दिखाने लगा। उसका कारण भी स्पष्ट हो गया कि अधिक परिश्रम और सख्त दिमागी मेहनत से पैदा हुआ है।

ऐसे ही कर्मों के फल को देखकर इस विद्या को जानने वाले भी यह बतला सकते हें कि यह फल अमुक कर्म का फल है और इसके दूर करने (निवृत्ति) का उपाय अथवा प्रायश्चित क्या है? परन्तु मनुष्य के वश की यह बात नहीं।

पुत्र— तो डाक्टर के कथनानुसार मेरा यह रोग इसी जन्म में ही पैदा हुआ है और उसका यह फल मेरी इच्छा के विरुद्ध मिल रहा है। मैंने तो यह कभी नहीं चाहा कि बीमार हो जाऊं। आपके विचारानुसार तो किसी भविष्य जन्म में इसका फल मिलना चाहिए था।

## शारीरिक चिकित्सा

पिता—प्यारे पुत्र! डॉक्टर तो केवल किसी रोग के वर्तमान कारणों को ही समझ सकते हैं। यह तो केवल इस शरीर के रोगों का ही कुछ थोड़ा—बहुत ज्ञान रखते हैं। हमारे

शास्त्रों में रोग की उत्पत्ति पाप से कही गई है। इसमें एक गहरा रहस्य है। डॉक्टर का कथन है कि रोगी ने कठोर परिश्रम किया। अपने मस्तिष्क से बहुत काम लिया, इसलिए उसे रोग हो गया। यदि इतनी मेहनत न करता तो बीमार न होता– यह उनका विचार है। उनकी जितनी विद्या है अथवा उनका ज्ञान जिस सीमा में परिमित है, वह उस से बाहर नहीं जा सकते। जैसे तुम्हारे रोग के सम्बन्ध में प्रत्येक ने अपनी–अपनी परिमित समझ के अनुसार विचार प्रकट करके रोग का निदान किया और उससे आगे नहीं बढ़ सके।

## आत्म–चिकित्सक

परन्तु आत्मिक डॉक्टर व चिकित्सक इन शारीरिक डॉक्टरों की अपेक्षा अपने ज्ञान–विज्ञान में बहुत बढ़े–चढ़े हैं। उन्हें इस आत्मा का ज्ञान है, जिसके आश्रय होकर मन और बुद्धि अपने इस राज्य पर शासन कर रहे हैं। इससे भी बढ़कर जिस प्रभु ने इस संसार की रचना करके जीवात्मा को विचरने के लिए, अपने कर्मफल भोगने और यदि हो सके तो आवागमन से छुटकारा पाने के लिए इस शरीर में भेजा है, उसको भी उन्होंने समझा हुआ है। डॉक्टर तो एकमात्र इस शरीर तक को भी भली प्रकार नहीं समझा। देखो! यह बात मैं तुम्हें एक दृष्टान्त देकर समझाता हूँ:–

## भोगफल के साधनकर्म

अब तुम्हारा कर्म–फल तुम्हारी दृष्टि के सामने दिखाई दे रहा है, किन्तु वह तुम्हें तब तक नहीं मिल सकता जब तक तुम उसके लिए यथोचित साधन न करो। जिन हाथों से तुमने बीज बोया था यदि उन्हीं हाथों को ऊंचा करके अथवा बांस का लगाया अड़ंगा बनाकर वृक्ष के ऊपर फल तक न ले जाते तो फल स्वयंमेव तुम्हारे पास नहीं आता। या यों समझो तुमने बीज बोया था अपने हाथ से। वह एक कर्म था जो किसी साधन से किया गया। अब उसका भोग अथवा कर्मफल, जिसे **प्रारब्ध** भी कह सकते हैं, वह भी किसी नए कर्म से ही प्राप्त होगा। इसका नाम वास्तव में **कर्म** नहीं वरन् **भोग–साधन** है। चाहे वह साधन हाथ ही क्यों न हो। अब तुमने यह साधन–मात्र कर्म करके वह मीठा अर्थात् आनन्द प्राप्त किया। परन्तु वास्तव में तो सन् 1627 में जो तुमने मीठा फल खाकर आनन्द पाया है, उसकी बुनियाद 1621 में रखी गई थी। या यों मान लो कि यदि तुम यह आम खाकर बीमार हो गये तो डाक्टर यही कहेगा कि इसने आम खाकर पानी पिया और बीमार हो गया। वह वास्तव में इसका मूल कारण नहीं जानता। वह यही कहता तथा समझता है कि यदि तुम यह आम न खाते तो कदापि बीमार न होते। परन्तु खाते कैसे नहीं, यह फल खाने के लिए ही तो तुमने वृक्ष बोया था। इसके अतिरिक्त और तुम्हारा प्रयोजन ही क्या था? जब तुम्हारा भोग तुम्हारे सामने आया तो यह अवश्य ही होना था कि तुम उसे खाओ और बीमार पड़ जाओ। यह तो अनिवार्य था, जो किसी प्रकार भी टाले नहीं टल सकता था। अतः किसी कर्म का फल ऐसा ही गुप्त होता है, जिसे जानने वाला कोई पूर्वजन्म का ज्ञाता विद्वान् ही हो सकता है।

**तस्य ते भक्तिवांसः स्याम।। अ. 6। 79। 3**
हे प्रभो! हम तेरे भक्त हों।

**श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय। ऋ. 1 । 104 । 6**
हे प्रभो! तेरी शक्ति में हमें श्रद्धा है।

# वैरागी राजकुमार

—**पं० शिवशर्मा,** उपदेशक

एक दिन एक राजपुत्र अपने राज्य में घूम रहा था। एकाएक राजपुत्र की दृष्टि एक घर के छत पर पड़ी। वहाँ सोलह वर्ष की एक कन्या स्नान कर अपने केशों को सुखा रही थी। वह मन्त्री की बेटी थी। उसे देख राजपुत्र तुरन्त ही मूर्च्छित हो गया। कुछ काल के पश्चात् जब उसकी मूर्च्छा जागी, तो फिर उसकी दृष्टि उस छत पर गई, परन्तु इसे रूपवती दिखलाई नहीं पड़ी। राजपुत्र अपने महल लौट आया। घर आकर उसने खाना छोड़ दिया और शोक भवन में जा लेटा! बहुत पूछने पर उसने सच्चा–सच्चा हाल कह सुनाया। राजा अपने पुत्र की यह दशा देख शोक में पड़ गया। राजा की यह दशा देख मन्त्री ने अपनी कन्या से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। कन्या ने अपने पिता से कहा, ''पिता जी! इसके लिये राजा और राजपुत्र क्यों दुःखी हैं? आप उनसे कह दें कि स्नान, भोजन करें। मेरी बेटी आपसे परसों मिलेगी।'' मन्त्री ने यह संदेश राजा व राजपुत्र को सुनाया। राजपुत्र अत्यन्त प्रसन्न हो गया। उसने स्नान, भोजन किया।

मन्त्री अपने घर लौटा, तो उसकी बेटी ने उससे कहा, ''पिताजी! थोड़ा जमालगोटा और 80 कूंडे मिट्टी के और 80 रुमाल रेशमी आज ही मँगवा दीजिये।'' पिता ने उसी समय ये सब चीजें मँगवा दीं। रूपवती ने ज्यों ही जमालगोटे का जुलाब लिया कि उसे दस्त पर दस्त आने प्रारम्भ हो गये। रूपवती हर बार उन्हीं कूंडों में शौच करती अधिक दस्त होने से रूपवती का शरीर पीला पड़ गया, वह ऐसी दुबली हो गई कि मानो चारपाई से लग गई थी। वह टूटी सी खाट पर लेटी हुई थी। उसके चारों तरफ मक्खियाँ भिनक रही थीं। वह मल, मूत्र सने कपड़े पहने थी। उसे अपने पिता से कहा, ''पिताजी! अब आप राजपुत्र को ले आइये।''

यह सुन मंत्री महल में गया और उससे अपने घर चलने का आग्रह किया। राजपुत्र सज धजकर बड़ी उमंग के साथ, मन्त्री के साथ चल दिया। जब राजपुत्र ने मन्त्री के घर में कदम रखा, तो उसे कुछ दुर्गन्ध आई। राजपुत्र ने रूमाल से अपनी नाक दबाते हुए कहा, ''मन्त्रीजी! दुर्गन्ध क्यों आ रही है?'' मन्त्री ने कहा, ''पता नहीं, आप चले आइये।'' दुर्गन्ध सहन करते हुए जैसे–तैसे राजपुत्र रूपवती तक पहुँचा। रूपवती की यह दशा देख वह दंग रह गया, ''अरे रे इसकी क्या दशा हो गई? मैंने परसों इसे उस रूप में देखा पर आज क्या हो गया?'' रूपवती ने कहा ''राजपुत्र, आइये।'' परन्तु राजपुत्र को रूपवती के पास जाना तो, क्या बल्कि वहाँ खड़े रहने में मिनट–मिनट में इतनी तकलीफ़ हो रही थी कि जिसका पारावार नहीं था। रूपवती ने कहा, ''राजपुत्र! यदि मुझसे आपकी प्रीति है तब तो यह दासी आपकी सेवा में उपस्थित है। यदि आपको मेरे देह की सुन्दरता से प्रेम था तो वह कूड़ों में भरी रखी है।'' परन्तु इस मूढ़ राजपुत्र को फिर भी बोध न हुआ। कूंडों पर रेशमी रुमाल देख इसे ख्याल हुआ कि खूबसूरती कोई बड़ी उत्तम वस्तु होगी, जिसे रेशमी रुमाल से ढका गया है। राजपुत्र ने रुमाल उठाया तो वहाँ शौच देख नाक दबाकर चल पड़ा। इससे उसको ऐसा वैराग्य हुआ कि उसने जीवन पर्यन्त योग के अंगों का पालन किया और मोक्ष प्राप्त किया।

# स्वातन्त्र्याभिलाषी–राष्ट्रभक्त

**–डॉ० सुधीर कुमार आर्य**

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
ऊर्वारूकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

सृष्टि उत्पत्ति, पालन एवं प्रलय रूप तीन काम करने वाले दया, न्याय, आनन्दादि गुणवाले सभी को पुष्ट करने वाले उस विष्णुरूप जगत् के कण–कण में समाये परमेश्वर का हम यजन–स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप यजन को करते हैं। वह परमात्मा हम पर कृपा करे और संसार के जन्म–मरण रूप बन्धन से इस प्रकार छुड़ावे जैसे खरबूजा अपने डण्ठल से पकने पर स्वतः छूट जाता है। लेकिन मोक्षरूप अमृत से हमें कभी पृथक् ना करे।

अनुप शहर की ही वह विस्मयकारी घटना है। एक बार की बात है कि अनूप शहर का ही कोई ब्राह्मण स्वामी दयानन्द के पास आया तथा बड़ी नम्रता से आदरपूर्वक सप्रेम पान भेंट किया। निश्छल प्रकृति, सौम्य स्वभाव श्री स्वामी दयानन्द ने उस ब्राह्मण का मान रखते हुए वह पान उस ब्राह्मण से ले लिया तथा अपने मुख में रख लिया। पान को जैसे ही चबाया उसके रस के स्वादमात्र के स्पर्श से स्वामी जी जान गये कि इस पान में विष मिला हुआ है।

परन्तु क्षमाशील उदारता की परममूर्त्ति स्वामी दयानन्द जी महाराज ने उस ब्राह्मण की कोई किसी प्रकार की भी भर्त्सना नहीं की। अपितु गंगा के किनारे गये, वहाँ बस्ती कर्म तथा न्यौली कर्म आदि यौगिक क्रिया से शरीर में गये हुए जहर को निकाला, जहर के बाहर निकल जाने पर स्वस्थता का अनुभव होने पर वापिस अपने स्थान पर आकर अपने आसन पर विराजमान हो गये।

स्वामी दयानन्द पर परम भक्त वहाँ का तहसीलदार श्री सैयद मोहम्मद था। उस तहसीलदार महोदय को जब इस घटना का पता चला तब स्वामी जी के प्रति अगाध श्रद्धावश उस दुष्ट ब्राह्मण को जेल में डाल दिया। अपने उस कार्य से प्रसन्न होकर जब तहसीलदार महोदय, स्वामी दयानन्द की सेवा में उपस्थित हुए तब स्वामी जी ने उनसे मुख फेर लिया तथा उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया।

वह तहसीलदार स्वामी जी के इस अभूतपूर्व व्यवहार को देखकर हैरान हो गया तथा इसका कारण पूछा। तहसीलदार के द्वारा कारण पूछने पर मुनिवर ने जो उत्तर दिया वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। स्वामी दयानन्द ने कहा– ''मैंने सुना है कि तुमने मेरे लिए किसी ब्राह्मण को जेल में डाल दिया है।'' **मैं इस संसार को कैद कराने नहीं आया हूँ अपितु मानवमात्र को कैद से छुड़ाना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है।** यदि कोई दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी सज्जनता को क्यों छोड़ें?

स्वामी दयानन्द के मुखारविन्द से सौम्यता भरे इन शब्दों को सुनकर तहसीलदार महोदय रोमांचित हो गये। उन्होंने अब से पहले क्षमा की ऐसी अद्भुत प्रतिभा का दर्शन नहीं किया था। उसने तुरन्त उठकर स्वामी दयानन्द को प्रणाम किया तथा जल्दी से जाकर उस ब्राह्मण को जेल से छोड़ दिया।

शिक्षा–अपने कारण से स्वामी दयानन्द किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं चाहते थे। स्वतंत्रता का पुजारी जब अहर्निश मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् का जाप करता था, तो किसी प्राणी को अपने कारण से कष्ट कैसे दिलवा सकता था।

ओ३म्

# यजुर्वेद में पुरुषार्थ चतुष्टय तथा यज्ञ-विवेचन

—डॉ० भवानीलाल भारतीय

चारों वेद संहिताओं में यजुर्वेद का दूसरा स्थान है। मन्त्रों की संख्या की दृष्टि से यह तीसरे स्थान पर है। चालीस अध्यायों में विभक्त यजुर्वेद की कुल मन्त्र संख्या 1975 है। भारतीय संस्कृति में यह मान्यता है कि मनुष्य को अपने जीवन में चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसी जीवन में यदि कोई मनुष्य इन चारों पुरुषार्थों को पा लेता है तो इसे उसके जीवन की सफलता समझना चाहिए। 'धर्म' शब्द जिस धातु से बना है उसका अभिप्राय धारण किये जाने से है। हमारे शास्त्रों में धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। वस्तु के स्वभाव को धर्म बतलाने वाली परिभाषा सर्वाधिक वैज्ञानिक तथा तर्क की कसौटी पर खरी उतरती है। किसी व्यक्ति, वस्तु या पदार्थ के सहज गुणों को उसका धर्म कहा जाना उचित ही है। इस परिभाषा के अनुसार अग्नि का जलाने का स्वभाव उसका धर्म है तो जल की प्रवाहशीलता उसका धर्म है। वायु का प्रवाहित होना, बहना ही धर्म है तो धरती की धारणा—क्षमता उसका सहज धर्म है। दयानन्द सरस्वती के अनुसार धर्म वह है जो पक्षपात से रहित, न्याय से युक्त तथा सत्यभाषण से संयुक्त है। ईश्वर की आज्ञा के रूप में मानव जाति को प्राप्त वेदों की आज्ञा को भी धर्म मानते हैं तथा इसके विपरीत पक्षपात, अन्याय तथा असत्य—युक्त आचरण को अधर्म कहते हें? भारत की वैदिक परम्परा में वेदों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसी धारणा से प्रभावित होकर महर्षि जैमिनि ने अपने मीमांसादर्शन में वेदों के आदेशों और उपदेशों को धर्म की संज्ञा दी। इसी प्रकार महर्षि कणाद ने धर्म उसे माना है जो हमारे इस लोक और परलोक (मोक्ष) के आदर्शों को सिद्ध करने में सहायक हो। महाभारत में धारण करने को धर्म का प्रमुख तत्त्व बताया तो मनुस्मृति में धैर्य, क्षमा, इन्द्रियदमन, चोरी न करना, पवित्रता, मन का वशीकरण, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध के अभाव को दश लक्षण वाला धर्म स्वीकार किया गया। उपर्युक्त विवेचन से धर्म के व्यापक अर्थ को समझा जा सकता है, साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत भाषा का यह शब्द 'धर्म' अपूर्व तथा अद्वितीय है। इसमें निहित भाव को व्यक्त करने वाला कोई अन्य शब्द सम्भवतः विश्व की किसी भाषा में नहीं मिलेगा। सम्प्रदाय, में, पन्थ मजहब Sect तथा Religion शब्द कोई न कोई अर्थ अवश्य रखते हैं किन्तु वे धर्म के पर्यायवाची नहीं हो सकते। धर्म का अर्थ स्वकर्त्तव्य पालन के लिए भी होता है।

वैदिक परम्परा में धर्मपूर्वक अर्थ के उपार्जन को श्रेष्ठ माना गया है। असत्य, अन्याय और अधर्म से पैदा किया गया अर्थ (धन) मनुष्य के आत्मिक विकास में बाधक बनता है। साथ ही यह ध्यान रखना चाहिए कि अर्थ की सर्वथा उपेक्षा करना भी उचित नहीं है। जीवन—यापन

के सभी साधनों को अर्थ के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अर्थ का उपार्जन अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। निश्चय ही अर्थ के द्वारा हम अपनी लौकिक कामनाओं (इच्छाओं) को पूरा करते हैं। इसलिए यह ध्यान रखना होगा कि धर्मपूर्वक कमाये अर्थ से ही हम अपनी लौकिक और सांसारिक कामनाओं को पूरा करें। अर्थ पर धर्म का नियन्त्रण आवश्यक है।

किन्तु क्या अर्थ का उपार्जन और कामनाओं की पूर्ति मानव जीवन का अन्तिम और चरम लक्ष्य है? यदि ऐसा माना जाये तब तो एक पशु और मनुष्य में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा। पशु भी येन केन प्रकारेण अपने उदर पूर्ति के साधन जुटा लेता है किन्तु उसे उचित और अनुचित का ज्ञान नहीं होता। मानव का चरम लक्ष्य तो जन्म मरण के शाश्वत चक्र से मुक्ति प्राप्त करना तथा सच्चिदानन्द लक्षणों वाले परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करना है। इसे ही मोक्ष–प्राप्ति कहा जाता है। शास्त्रकारों की सम्मति में आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीन प्रकार के दुःखों से पूर्ण मुक्ति पाकर परमात्मा के अद्वितीय आनन्द रूपी सुख को अनुभव करना ही वास्तविक मुक्ति या मोक्ष है।

### साधन त्रय

ऊपर विवेचित चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हमारे शास्त्रकारों ने ज्ञान, कर्म और उपासना रूपी तीन प्रकार के साधनों का उल्लेख किया है। भारतीय दर्शन में ज्ञान की महिमा सर्वत्र वर्णित हुई है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है–

ज्ञान के समान अन्य कोई पवित्र वस्तु नहीं है। दर्शनकारों का मत है–

**ऋते ज्ञानात्र मुक्तिः।**

ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती। ज्ञानपूर्वक कर्म का आचरण ही लक्ष्य–सिद्धि में हमारा सहायक होता है। जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही जानना यथार्थ ज्ञान है तथा सत्य के विपरीत कहना या जानना ज्ञान नहीं कहलाता। संसार में यों तो अनेक मत ऐसे हैं जहाँ ज्ञान की अपेक्षा श्रद्धा या विश्वास को अधिक महत्व दिया जाता है किन्तु भारतीय दर्शन में ज्ञान को सर्वोपरि ठहराया गया है। जब हम ज्ञानपूर्वक कर्म करेंगे तो हमें अभीष्ट फल अवश्य मिलेगा। ज्ञान के अनन्तर कर्म की चर्चा आती है। वैदिक साहित्य में कर्मों का विचार और कर्मसिद्धान्त की मीमांसा अत्यन्त विस्तार से मिलती है। कर्म भी अनेक प्रकार के हैं। कृष्ण ने गीता में कर्म, अकर्म और विकर्म की तीन श्रेणियाँ वर्णित की हैं। इसी प्रकार नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म तथा काम्य कर्म का विभाजन भी शास्त्रों में मिलता है। नित्य किये जाने वाले कर्म नैत्यिक हैं तो किसी अवसर विशेष पर किये जाने वाले कर्म नैमित्तिक कहलाते हैं। किसी विशेष कामना को पूरा करने के लिए जो कर्म किये जाते हैं वे काम्य कर्म कहलाते हैं। गीता में कर्म का समग्र विवेचन मिलता है तथा कुशलतापूर्वक किये जाने वाले कर्म को ही योग कहा गया है। भगवान कृष्ण का सर्वाधिक जोर इस बात पर है कि कर्त्तव्य बुद्धि से ही हमें कर्मों का आचरण करना चाहिए, फल–प्राप्ति की लालसा से नहीं। कर्त्तव्यबुद्धि से किया गया कर्म हमें अीीष्ट फल प्रदान करता है। शुभशुभ कर्मों का फल प्राप्त हो जहाँ अनिवार्य माना गया है वहाँ यह भी कहा गया है मनुष्य किसी भी क्षण कर्म से विमुख होकर नहीं रह सकता। किसी न किसी कर्म में प्रवृत्त होना उसकी नियति है जो उसके साथ अनिवार्यतः जुड़ी है।

श्रेष्ठ तथा शास्त्रविहित कर्मों के करने से मोक्ष–प्राप्ति में सहायता मिलती है। अन्ततः भक्ति या उपासना को परमात्मा की प्राप्ति का

प्रमुख साधन माना गया। योगदर्शन में इसे ईश्वर–प्रणिधान कहा गया जबकि महर्षि शाण्डिल्य तथा महर्षि नारद ने अपने भक्ति–सूत्रों में भक्ति या उपासना को व्याख्यात किया है। ईश्वर में चरम अनुरक्ति (प्रेम) को भक्ति कहा गया तथा इसके अनेक साधन बताये गये हैं। परम्परा से यह मान्यता प्रचलित है कि वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) में क्रमशः ज्ञान, कर्म तथा उपासना का प्रतिपादन किया गया है। यजुर्वेद को मुख्यतः कर्मकाण्ड का प्रतिपादक वेद माना गया है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इस वेद में कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई विषय व्याख्यात हुआ ही नहीं। यजुर्वेद में दार्शनिक तत्त्वों की प्रचुरता है जहाँ ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि–रचना, जीवन और मृत्यु आदि अनिर्वचनीय विषयों पर भी बहुत कुछ सटीक तथा सार्थक चर्चा उपलब्ध होती है। साथ ही मनुष्य का आचरणीय धर्म क्या है? आचारमूलक धर्म किसे कहते हैं और सदाचारी व्यक्ति किस प्रकार के आचरण से अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है, यह भी इस संहिता में मिलता है। अनेक लौकिक और सांसारिक विषयों की विवेचना तथा मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर भी हमें यहाँ मिलते हैं। इस दृष्टि से यजुर्वेद का प्रतिपाद्य तथा विवेच्य विषयों का फलक पर्याप्त विस्तृत है।

सामान्यतया यह माना जाता है कि यजुर्वेद के प्रथम उनतालीस अध्याय कर्मकाण्डपरक हैं जिनमें दर्शेष्टि (अमावस्या का यज्ञ) पूर्ण मासेष्टि (पूर्णिमा के दिन किये जाने वाला यज्ञ) नित्य किये जाने वाले अग्निहोत्र के अतिरिक्त राजसूय, अश्वमेध आदि बड़े–बड़े यज्ञ–यागों की विधियाँ उल्लिखित हुई हैं और ब्रह्मज्ञान के विचार को अन्तिम चालीसवें अध्याय में देखा जा सकता है। इस कथन में आंशिक सच्चाई ही है। यजुर्वेद के सभी अध्यायों में यत्र–तत्र ऐसे विचार मिलते हैं जो मानव जीवन की सर्वतोमुखी उन्नति में सहायक होते हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपनी नैतिक उन्नति कर सकता है।

यजुर्वेद को गद्यात्मक कहा जाता है। ऋग्वेद में ऋचाएं हैं जो छन्दोविधान से युक्त हैं। यजुर्वेद के गद्यात्मक मन्त्र कण्डिकाएँ कहलाती हैं। यत्र तत्र गायत्री आदि लघु छन्द भी हैं। वर्तमान युग में स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद पर समग्र और सर्वांगीण भाष्य लिखा है। इस भाष्य में मन्त्रों के देवता, ऋषि, छन्द तथा स्वरों का सर्वत्र निर्देश किया गया है। मध्यकालीन भाष्यकारों की न केवल यजुर्वेद अपितु सभी वेदों के बारे में यह समान धारणा थी कि वेदों के इस संहिता भाग में वैदिक आर्यों द्वारा प्रवर्तित और उनमें प्रचलित यज्ञ–यागादि का विधान ही उपलब्ध होता है। अतः उन्होंने मात्र कर्मकाण्डीय दृष्टि से वेदों का अर्थ और व्याख्या लिखी। इसी दृष्टि का परिणाम था कि इनके द्वारा रचित भाष्यों में प्रत्येक मन्त्र का विनियोग भी मन्त्र के साथ उल्लिखित हुआ है। स्वामी दयानन्द भी विभिन्न वेद मन्त्रों के उच्चारण (विनियोग) के औचित्य को स्वीकार करते हैं किन्तु उनका यह भी कहना है कि मात्र कर्मकाण्ड का विवेचन ही वेदों का लक्ष्य नहीं है। वे वेदों को सर्वविधाओं का भण्डार तथा मनुष्य के लिए उपयोगी लौकिक और अलौकिक ज्ञान का मूल स्रोत (उत्स) मानते हैं। उनकी दृष्टि में वेदों का अर्थ पारमार्थिक और लौकिक (व्यावहारिक) दोनों दृष्टियों से किया जाना चाहिए। पारमार्थिक दृष्टि से विचार करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों का चरम तात्पर्य ईश्वर में है।

# विद्ययाऽमृतमश्नुते

**—स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती**

वेद में उपदेश है कि—

**कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**
**एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।**

हे मनुष्य! तू इस संसार में वेदोक्त श्रेष्ठ कर्मों को ज्ञानपूर्वक करता हुआ ही दीर्घजीवन को प्राप्त हो, क्योंकि ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ कर्त्तव्य, कर्मों को करने से वे कर्म तेरे बन्धादि दुःख के कारण न होंगे और अज्ञानपूर्वक बिना सोचे समझे तथा विधिरहित किये कर्म इष्टफलदायक भी नहीं होते, प्रस्तुत नरक में ही पहुँचा देते हैं। ऐसा वेद में लिखा है—

**अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।**
**ततो भूय इवते तमो ये उ विद्यायां रताः।।**
**(यजु. 40/12)**

जो लोग (अविद्यामुपासते) अविद्या की उपासना करते हैं तो वे (अन्धतमः प्रविशन्ति) अन्धकार में गिरते हैं, किन्तु (ततःभूय) उनसे भी बढ़कर वे लोग घोर अन्धकार में पड़ते हैं। (ये उ) जो कि (विद्यायां रताः) विद्या में रत हैं। इससे अगले मन्त्र में कहा है कि विद्या और अविद्या इन दोनों का भाव और पदार्थ भिन्न—भिन्न हैं, जिसे विद्वान् समझ सकते हैं उससे अगले मन्त्र में कहा है—

**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।**
**अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।**
**(यजु. 40/13)**

(ये) जो मनुष्य (विद्यां चाविद्यां च) विद्या और अविद्या इन दोनों को (उभयं सह) एक साथ—साथ ही (वेद) जानते हैं। वे अविद्या का यथार्थ स्वरूप जानने से शक्ति सम्पन्न होकर (मृत्युम्) मौत को (तीर्त्वा) तरकर जीतकर तथा (विद्यया) विद्या को जानकर (अमृतम्) अमृतस्वरूप ईश्वर को प्राप्त करके (अश्नुते) मोक्ष आनन्द का भोग करते हैं।

संक्षेप में यहाँ पर 'अविद्या और विद्या' आये हुये दोनों का अर्थ अविद्या से कर्म और विद्या से ज्ञान का अर्थ किया जाता है। जिससे अर्थ का भाव यह हुआ कि जो मनुष्य बिना ज्ञान के केवल अविद्या रूप कर्मकाण्ड में ही लीन है। अर्थात् सोचना समझना कुछ नहीं और अन्ध परम्परागत बिना सोचे समझे कर्म करते हैं, वे लोग ज्ञानशून्य कर्म के फल से अज्ञानान्धकार के नरक में गिरते हैं, किन्तु उनसे भी बढ़कर घोर नरक में वे लोग गिरते हैं जो कि कर्म तो कुछ नहीं करते और केवल विद्या—ज्ञान में ही तत्पर रहते हैं, क्योंकि ज्ञान तो प्रकाश है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप का यथार्थ रूप में जान तो सकता है, परन्तु उस जानने मात्र से ही क्या लाभ हो सकता है, जो कि कर्म में परिणत न किया गया हो। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह प्रथम ज्ञान प्राप्त करे और तदनन्तर ज्ञानपूर्वक ही श्रेष्ठ कर्म करे। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ कर्म करते हैं, वे कर्मवीर मनुष्य संसार में प्रत्येक प्रकार के कठिन से कठिन मार्ग को भी पार कर जाते हैं, उनके लिये मृत्यु भी कोई भयानक पदार्थ नहीं रहता। महातपस्वी भीष्म पितामह ने अविद्या पदवाच्य, किन्तु ज्ञानपूर्वक किये हुये वैदिक कर्मशीलता से ही शरशय्या पर पड़े हुये भी मृत्यु को फटकार दिया था। इस प्रकार वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि विवेकी कर्मशील

नरशार्दूलों को मृत्यु का भय तनिक भी भयभीत न कर सका। बस! यही इनको मृत्यु जीतना या इससे पार होना है।

हम जो कुछ भी करें करावें, सब कार्य सोच–समझ कर ज्ञानपूर्वक ही किया करें। ऐसा करने पर ही मनुष्य सांसारिक दुःखों से बचकर लौकिक सुखों को भी पा सकता है और अन्त में 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' ज्ञानपूर्वक कर्म के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करके मोक्षानन्द को भी प्राप्त कर सकता है। गीता में कहा है कि–

**प्रयत्नाद यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।**
**अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम्।।**
(गीता 6/45)

अर्थात् अनेकशः जन्म जन्मान्तरों में किये गये पुण्य कर्मों के फल से निष्पाप होकर कोई विरला ही पवित्र आत्मा योगी महात्मा अपने सर्वोच्च लक्ष्य मोक्षप्राप्ति की सिद्धि कर पाता है। मुण्डकोपनिषद् में भी कहा है–

**स यो हवै तत्परमं ब्रह्मवेद। स ब्रह्मैव भवति। नाऽस्याऽब्रह्मवित् कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा, ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।। (3/1/9)**

इस मन्त्र में भी कहा है कि पुण्यात्मा जीव उस परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त होकर अन्य जीवों की अपेक्षा गौणिक स्वरूप में कुछ अधिक बड़ा (ब्रह्म) और ज्ञानपूर्वक बन जाता है।

# सचिव की कलम से

प्रिय पाठकगण,

जुलाई 2016 के पवमान पत्रिका के अंक में मैंने अवगत कराया था कि वैदिक साधन आश्रम तपोवन में निर्माणाधीन चिकित्सालय को पूर्ण करने के लिए धन की आवश्यकता है। आपको यह बताते हुए अति हर्ष हो रहा है कि हमारे अनुरोध को स्वीकार करते हुए एक दानदाता ने चिकित्सालय के लगभग आधे भाग को पूर्ण करने के लिए अपना सहयोग प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की है ताकि बाह्य चिकित्सा सेवाएं (ओ.पी.डी.) प्रारम्भ की जा सकें। इस कार्य पर लगभग 25 लाख से अधिक की धनराशि व्यय होने की संभावना है। चिकित्सालय भवन के शेष कार्यों को पूर्ण करने के लिए भी लगभग 25 लाख रुपयों की और आवश्यकता होगी। सभी पाठकों से सादर अनुरोध है कि वह अपने किसी प्रियजन के नाम से इस कार्य में सहयोग दे सकते हैं। उनकी इच्छानुसार दानदाता का नाम शिलापट्ट पर लिखवा दिया जायेगा। हमें आशा है कि आपके सहयोग से यह पवित्र कार्य शीघ्र पूर्ण होगा। आप दानराशि आश्रम के बैंक खाता सं. 2162101001530, IFSC Code CNRB0002162 के अकाउंट ''वैदिक साधन आश्रम'' केनरा बैंक, क्लॉक टावर ब्रांच देहरादून में सीधे जमा करा सकते हैं। आश्रम को दिया गया दान आयकर की धारा 80–जी के अन्तर्गत कर मुक्त है। दान राशि जमा करने के उपरान्त कृपया आश्रम के दूरभाष नं. 0135–2787001 पर सूचित कर दें ताकि दान की रसीद आपके पते पर भेजी जा सके।

# वेदों में विज्ञान के कुछ अद्भुत कारनामें

—डॉ० रामनाथ वेदालंकार

विज्ञान मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक आवश्यकता है। हम संघर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न करते हैं, कोयले पर रोटी को फुलाते हैं, बारूद से पर्वत खण्डों को तोड़ते हैं, नल द्वारा पानी को ऊँचाई पर ले जाते हैं, कूप से पानी खींचने के लिए चरखी का उपयोग करते हैं, सिंचाई के लिए ढेंकली लगाते हैं, शीत में ऊनी वस्त्र पहनते हैं, पर्वत पर चढ़ते समय शरीर को झुका लेते हैं, इत्यादि हमारी छोटी—छोटी क्रियाओं में भी विज्ञान के नियम काम करते हैं, भले ही हमारा उनकी ओर ध्यान न जाता हो। मनुष्य विज्ञान के बिना पंगु है। विज्ञान द्वारा ही वह हिंस्र जन्तुओं तथा शत्रुओं से रक्षार्थ शस्त्रास्त्रों का निर्माण करता है, शीघ्रता से स्थानान्तर पर पहुँचने के लिए यानों को रचता है, रुग्ण होने पर स्वास्थ्य—लाभ के उपायों का आविष्कार करता है, विविध विद्याओं की उन्नति के लिए यंत्र बनाता है, उपयोगी वस्तुओं को उत्पन्न करने के लिए कारखाने निर्मित करता है। वेदों में जिस प्रकार धार्मिक राजनीतिक आदि क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए प्रेरणाएं दी गयी हैं, उसी प्रकार वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रगति के लिए भी वेद हमें प्रेरित करते हैं, यद्यपि इतना अवश्य है कि वेद की दृष्टि में विज्ञान का उपयोग जनकल्याण के लिए होना चाहिए। यहाँ हम वेदों में उल्लिखित कुछ वैज्ञानिक बातों की चर्चा करेंगे।

**व्योमयान** : वेदों में व्योमयान से आकाश में उड़ने का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। ऋग्वेद में एक ऐसे रथ का वर्णन किया गया है, जिसमें न घोड़ा है, न लगाम है, जो तीन पहियों से चलता है तथा आकाश में भ्रमण करता है—

**अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः। ऋग्० 4/36/1**

एक अन्य स्थान पर सैनिकों को प्रेरणा की गई है कि तुम ऐसे व्योमयानों पर स्थित होकर पक्षियों के समान उड़ो, जो विद्युत् से चलते हों, जिनके विशाल पंख हों तथा जिनमें शस्त्रास्त्र एवं आवश्यक खाद्य—सामग्री निहित हो—

**आ विद्यु न्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैं रथेभियात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा—क्यो न पप्तता सुमायाः।।**

**ऋग्० 1/88/1**

ऋग्वेद के दशम मण्डल में कपोत नामक एक व्योमयान का वर्णन है, जैसे आजकल व्यामयानों के नाम राजहंस आदि रख लिये जाते हैं। दूसरे देश का दूत होकर एक कपोत किसी अन्य देश में पहुँचा है। उस देश के वासी उसका स्वागत करते हुए कहते हैं कि दूसरी भूमि का दूत जो यह कपोत हमसे कुछ चाहता हुआ हमारी भूमि में आया है, उसका हम सत्कार करते हैं—

**देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम। तस्या अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।। ऋग् 10/165/1**

यह ठीक वैसा ही प्रसंग है, जैसे हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान का कोई यान (यानारोही दल) किन्हीं समस्याओं पर वार्तालाप करने के लिए हमारे देश में आये। जैसे इस मंत्र में पक्षी विशेष कबूतर—वाची कपोत शब्द विमान

के लिए प्रयुक्त किया है, वैसे ही अन्यत्र पक्षी सामान्य–वाची 'वि' शब्द आता है।

**वेदा यो वीनां परमन्तरिक्षेण पतलाभ्।
वेद नावः समुद्रियः।। ऋग्० 1/25/7**

यहाँ वरुण की स्तुति में कहा गया है कि वह आकाश में उड़ने वाले विमानों तथा समुद्र में चलने वाली नौकाओं को जानता है। नौकाओं की तुलना में पक्षिवाची 'वि' शब्द का विमान अर्थ करने में ही अधिक औचित्य है।

**जलयान**– जलयान के प्रयोग का उपदेश देने के लिए वेद में 'अश्विनौ' द्वारा व्यापारी भुज्यु को समुद्र पार ले जाने का एक काल्पनिक कथानक मिलता है। तुग्र–एक राजा है, वह–अपने देश के व्यापारी भुज्यु तथा उसके साथियों को जलपोतों द्वारा देशान्तर में भेजता है। पोतचालक अश्वी निरन्तर तीन दिन–रात जलयात्रा कराते हुए उन्हें सुरक्षित पार पहुँचा देते हैं–

**तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयि न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः। तमूहथुनौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरक्षिप्रुद्भिरपोदकाभिः।।**

**तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिब्रजद्भि र्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गः। समुद्रस्य धन्वन्नार्द्र स्य पारे त्रिभी रथैः शतपदिभः षडश्वैः।। ऋग्० 1/116/3/4**

यहाँ नौकाओं या जलपोतों की विशेषता बताने वाले उनके कुछ विशेषण प्रयुक्त हैं। 'अन्तरिक्षप्रुद्' से सूचित होता है कि वे जलपोत बिना डूबे पानी के ऊपर–ऊपर चलते हैं। 'अपोदक' से आशय है कि उन पर पानी का प्रभाव नहीं होता, अर्थात् वे 'वाटरप्रूफ' हैं। वे पतंग हैं, अर्थात् वेग के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वे पानी के ऊपर बढ़े चले जा रहे हैं। वे शतपद् भी हैं, क्योंकि उनमें चलाने–रोकने आदि के लिए अनेक कलें लगी हुई हैं। छः इंजनों वाले होने के कारण वे षडश्व है। इस प्रसंग में आये तुग्र, भुज्यु एवं अश्विनी शब्द भी यौगिक है। राजा के अर्थ में आया तुम शब्द **'तुकि हिंसाबलादाननिकेतनेषु'** धातु से औणादिक रक् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इससे राजा का शत्रुहिंसक, बसी, संग्रहशील अनि होना सूचित होता है। 'भुज्यु' का अर्थ है भोग्य पदार्थों की इच्छा करने वाला, यहां इच्छा अर्थ में क्यच् प्रत्यय हुआ है। अश्विनी का अर्थ है अश्वों वाले या गति वाले अर्थात् चालक।

एक अन्य मंत्र में ऐसे यान का उल्लेख है जो पनडुब्बी की तरह समुद्र के अन्दर भी चल सकता है तथा आवश्यकतानुसार पक्षी के समान आकाश में भी उड़ सकता है। इसे भी अश्विनी ने तुग्र के पुत्र भुज्यु के उपयोगी के लिए रचा है–

**युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवम्
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौऽग्र्या कम्।।
ऋग् 1/182/5**

**जल के घटक तत्व**– आधुनिक विज्ञानवेत्ता प्रयोगशाला में परीक्षण करके दिखाते हैं कि जलघटक तत्व ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन नामक दो गैसें हैं। उनमें विद्युद्धारा प्रवाहित करने से जल उत्पन्न हो जाता है, तथा विद्युत द्वारा जल को फाड़ने पर जल उक्त गैसों में विभक्त हो जाता है। यह रहस्य निम्न वेदमंत्र में वर्णित है–

**मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता।। ऋग् 1/2/7**

इसमें उक्त दो गैसों को क्रमशः मित्र तथा वरुण नाम दिया गया है। जल के लिए घृत शब्द प्रयुक्त हुआ है– **घृतमित्युदकनाम जिघर्तेः सिंचति कर्मणः, निरुक्त 7/24।** अथर्ववेद में एक स्थान पर वर्षों को मित्र और वरुण से मिलकर बना हुआ कहा गया है– **न वर्षः मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभिवर्षति, अथर्व 5/19/15।** ऋग्वेद के एक मन्त्र में वसिष्ठ

को मित्र एवं वरुण से उत्पन्न तथा उर्वशी को मन से अधिजात कहा है। यहाँ भी वसिष्ठ से वर्षा की बूँद से वर्षा ही अभिप्रेत है, और मित्र–वरुण उक्त दो वायुएं तथा उर्वशी विद्युत् है–

**उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ**
**उर्वश्या ब्रह्मन् मनसाऽधिजातः।।**
**ऋग् 7/33/11**

**वर्षा कराना** : कभी–कभी वर्षा की महती आवश्यकता होने पर भी वर्षा नहीं होती, या तो बादल आ–आकर चले जाते हैं, या आते ही नहीं। ऐसी अवस्था में वर्षा कराने के उपायों का आविष्कार करने में वर्तमान विज्ञान संलग्न है। वैज्ञानिक ऐसे परीक्षण कर रहे हैं कि विमान द्वारा ऊपर पहुँचकर आकाश में कुछ पदार्थ छिड़कने से बादलों को बरसाया जा सके। अभी यह कार्य असंभव तो नहीं, किन्तु अतिव्यवसाव्य समझा जा रहा है। परन्तु वेद में मन्त्र द्वारा कृत्रिमरूप से वर्षा कराने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दृष्टिकाम सूक्त में देवापि आष्टिषेणा यज्ञ के वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा उत्तर समुद्र (आकाश) से अधर समुद्र की ओर जल बरसाने में सफल होता है–

**आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्–**
**देवापि देवसुमति चिकित्वान्।**

**स उत्तरस्मादधरं समुद्रमयो दिव्या**
**असृजद् वर्ष्या अभि।। ऋग् 10/98/5**

अगले मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि आकाश में जल देवों द्वारा रुके हुए स्थित हैं, अर्थात् ऐसी परिस्थिति है कि बादल छाये हुए हैं, किन्तु वृष्टि नहीं होती, तब देवादि अपनी कला से उन्हें बरसा देता है। इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र में अग्नि को सम्बोधन कर कहा है कि प्रचुर जलों को बरसा दो। आज भले ही इस विज्ञान से हम पूर्णातः परिचित न हों, पर वेद से प्रेरणा लेकर हम इस दिशा में प्रगति कर प्रकृति पर विजय पा सकते हैं :

**कृत्रिम टांग लगाना**– रणभूमि में रात्रि में युद्ध करते–करते खेल योद्धा की पत्नी विश्पला की टांग कट कर गिर पड़ती है, जैसे पक्षी का पंख टूट कर गिर जाता है। खेल है ऐसा वीर जो संग्राम को क्रीड़ा समझता है। विश्पला का अर्थ है प्रजा का पालन करने में समर्थ वीरांगना। अश्विनी नामक चिकित्सक उसकी टूटी टांग के स्थान पर नई आयसी जंघा लगा देते हैं, जिससे वह आसानी से चल–फिर सकती है–

**चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पणमाजा लेखस्य परितक्म्यायाम्।**

**सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।। ऋग् 1/116/16**

**वृद्ध को तरुण बनाना**– आजकल कुछ वैज्ञानिक ऐसी औषधि के आविष्कार में लगे हैं, जिससे वृद्ध को तरुण बनाना जा सके। वेद में इस विद्या का भी वर्णन मिलता है। अश्वी वैद्य एक जीर्ण शरीर वाले च्यवान को अपनी संजीवनी क्रियाओं से पुनः युवा कर देते हैं–

**युवं च्यवानमश्विना जरन्तं**
**पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः।।**
**ऋग् 1/117/13**

ऋभुओं के सम्बन्ध में भी वेद ऐसी ही चर्चा करता है। वे वृद्ध माता–पिता को पुनः युवाः बना देते हैं।

**पुरुष सन्तान उत्पन्न करना**– जिन स्त्रियों के कन्याएं ही उत्पन्न हैं, उनके लिए पुत्रोत्पत्ति का वेद में यह उपाय बताया गया है कि शमी–वृक्ष के ऊपर उगे हुए अश्वत्थ (पीपल) का वे सेवन करें। अब यह सेवन किस प्रकार, किस रूप में, किस समय किया जाये इसका अनुसन्धान करना भिषगाचार्यों का कार्य है।

**शमीमश्वत्थ आरूढ़स्तत्र पुंसवनं कृतम्।**
**तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि।।**
**अथर्व 6/11/1**

**बूढ़ी वन्ध्या गाय को दुधारू करना**– चिकित्सक 'अश्चिनै–युगल' शयु ऋषि की बूढ़ी गाय को, जिसने दूध देना बन्द कर दिया है, फिर से दुधारू बना देते हैं–

**अधेनुंः दस्रा स्तर्यं विषक्ताम्।**
**अपिज्वतं शयवे अश्विना गाम्।।**

**ऋ० 1/117/20**

ऋगु देवों में भी यह कौशल है कि वे चर्माविशेष गाय को ह्दयपुत्र गाय में परिणत करके उसे बछड़े से संयुक्त कर देते हैं–

**निश्चर्मण ऋमवो गामपिंशत**
**सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः।।**

**ऋ० 1/110/8**

**सौर ऊर्जा से यान एवं यन्त्र चलाना**– सौर ऊर्जा द्वारा विमानादि रथों एवं यन्त्रकलाओं को चलाये जाने का वर्णन भी वेदों में अनेक स्थलों में आता है, जिसमें पर्यावरण प्रदूषण की वर्तमान समस्या का समाधान निहित है।

**अस्माकमूर्जा रथं पूष्टु अविषु माहिनः।**
**भुवद् वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम्**

**ऋ० 10/26/9**

अपनी साक्षक्ता ऊर्जा द्वारा महस् पूषा सूर्य हमारे रथादि यानों में प्रवेश करे। वह बल–वेशों का बढ़ाने वाला हो और ध्वनियन्त्र में प्रयुक्त होकर हमारे बोले गये शब्दों को सुनाने वाला भी हो (शृणवद् श्रावयद्, लुप्रणिच्क प्रयोग)।

**युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति**

**ऋ० 6/47/**

त्वष्टा सूर्य अपनी किरणों से उत्पन्न विद्युतो को भूतान, जलयान एवं विमानों युक्त करता हुआ भूरि–भूरि चमक रहा है या यशस्वी हो रहा है।

**इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते**
**युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश।।**

**ऋ० 6/47/**

अनेक रूपों वाला सूर्य अपनी ऊर्जाओं के साथ गति कर रहा है। इसकी हजार किरणों यन्त्रकलाओं में तथा विमानादि यानों में युक्त होती हैं।

## मनुष्य के धड़ पर घोड़े के सिर का प्रत्यारोपण

ऋग्वेद प्रदम मण्डल के 116वें सूक्त के एक मंत्र पर सायणाचार्य ने पूर्वप्रचलित एक आदव्यादिका दी है। इन्दु ने दध्यङ् ऋषि को प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्या का उपदेश देकर यह चेतावनी दी कि यदि तुम यह विद्या किसी अन्य को बताओगे तो तुम्हारा सिर काट दूंगा। अश्रिचन् देव दध्यङ् से वह विद्या सीखना चाहते थे। वे उत्कृष्ट कोटि के शल्यचिकित्सक थे। अतः उन्होंने दध्यङ् ऋषि का असली सिर काट कर अलग सुरक्षित रख दिया और उसके बदले घोड़े का सिर लगा दिया। उसी घोड़े के सिर से दध्यङ् ने अश्रिवनों को वह विद्या बता दी। तब इन्द्र ने अपनी शर्त के अनुसार दध्यङ् का घोड़े वाला सिर काट दिया। अश्विनों ने दध्यङ् की ग्रीवा पर पुनः उसका असली सिर शल्यक्रिया द्वारा प्रत्योरोपित कर दिया। कथा की विरूरत व्याख्या करने का यहाँ अवकाश नहीं है। ऋग्वेद् में वर्णित शल्यक्रिया द्वारा प्रत्योरोपित कर दिया। ऋग्वेद् में वर्णित शल्यक्रियाविज्ञान कितना अदभुत है, यहीं दिखाना यहां प्रयोजन है। मन्त्र में भी देखिए–

**तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।। द्ध्यङ्ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदी मुवाच।।**

**ऋ० 1/116/12**

अर्थात् हे शल्यक्रिया के विशेषज्ञ नेता अश्रिवनो, मैं तुम्हारी एक करामात को प्रकट करने लगा हूँ, जैसे बिजली दृष्टि को प्रकट

करती है। वह करामात यह है कि तुमने आथर्वण दध्यङ् ऋषि के कन्धों पर घोड़े का सिर लगा दिया था, जिस सिर से उसने तुम्हें मधु विद्या कही थी।

## तीन टुकड़ों में खण्डित शरीर को पुनः जोड़ना

ऋषि पूर्ण स्वस्थ है, खूब चलता–फिरता, दौड़ता–भागता है (श्यैड् गतौ)। प्रभु उसके शरीर के तीन टुकड़े कर देते हैं। राजकीय शल्यचिकित्सक (दैव्यौ भिषजौ) अश्रिव–युगल तीन टुकड़ों में विभज्य उसके शरीर को सीकर पुनः चलने–फिरने योग्य बना देते हैं।

**त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू। ऋ०1/117/24**

## आग–भरे बम के गोले

स्वयं युद्ध की विभीषिका उत्पन्न करने के लिए नहीं, किन्तु शत्रु यदि युद्ध पर उतारू होता है तो शान्ति–रक्षार्थ वेद भारक शस्भास्भ बनाने की प्रेरणा करता है।

**इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्परि**
**अग्नितदोभि र्युवमश्महन्यभिः।।**
**ऋ० 7/104/5**

इन्द्र और सोम को संबोधन किया गया है। इन्द्र है वीर और सोम है शान्ति का उपासक। ''हे इन्द्र और सोम, तुम आग भरे बम के गोलों द्वारा आकाश से प्रहार करो।।'' यहां बम के गोले के लिए 'अश्महनमम्' का प्रयोग है और उसका विशेषण है 'अग्नितहा' अर्थात् आग से तपा हुआ या जिसमें अग्निताय की विस्फोटक सामग्री का वर्णन है, जो आकाश से, पृथिवी से और पर्वतों से छोड़े जा सकते हैं।

**इन्द्रा सोमा वर्तयतं दिवो वधं, सं पृथिव्या अधशंसाय तर्हणम्। उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो, येन रक्षो वाश्धानं विनूर्वथं निनूर्वथः।। ऋ० 7/104/4**

अर्थात् हे इन्द्र और सोम तुम आकाश से वध करने वाला बम छोड़ो, पाप प्रशंसक शत्रु पर पृथिवी से पृथिवी पर मार करने वाली मिसाइलें छोड़े, पर्वतों से शब्दकारी और तापकारी गोले बरसाओ, जिनसे तुम बढ़ते हुए राक्षस को विनिष्ट कर सकते हो।

वेदों में अन्यत्र आग्नेशास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्जन्यास्त्र आदि का भी वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर वैज्ञानिक कारीगर से बनाये हुए बिजली से चलने वाले लोहे के बम (आयस अश्मा) की चर्चा भी आती है–

**त्वमायसं प्रति वर्तयो गो र्दिवो अश्मानमुषनीतमृभ्वा। ऋ० 1/121/9**

इस प्रकार वेदों में प्रतिपादित कुछ वैज्ञानिक विषयों की चर्चा इस संक्षिप्त लेख में की गई है। अन्य भी अनेक विज्ञान–सम्बन्धी बातों का मूलरूप से वर्णन वेदों में उपलब्ध होता है। उनसे प्रेरणा पाकर हम इस दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

एक शंका यह की जाती है कि यदि वेद में व्योमयान आदि के निर्माण की विधि नहीं लिखी तो वेदों के ये वर्णन हमारे लिए निरर्थक हैं, हम इनका क्या करें। परन्तु वेद तो वस्तुतः प्रेरणा के स्रोत हैं। हमें क्या–क्या करना चाहिए किस–किस दिशा में प्रगति करनी चाहिए, यह प्रेरणा वेद से प्राप्त होती है। उसे हम किस प्रकार करें यह हमें अपनी बुद्धि से समझना है। आज भी जिन्होंने वैज्ञानिक वस्तुओं का आविष्कार किया है, वह क्या कहीं अक्षरशः लिखा हुआ पढ़ कर किया है? जैसे उन्होंने किया वैसे हम भी कर सकते हैं, प्रेरणा हम वेद से ले सकते हैं।

# मज़हबी पुस्तकें तथा वेद

—आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

आज हमारे राष्ट्र में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में आतंकवाद का राक्षस मानवता की हत्या करने में सक्रिय है। समाज और विश्व में समरसता का वातावरण पैदा करने के लिए विश्व बन्धुत्व तथा आपसी भाई—चारे की भावना का होना अनिवार्य हैं तथा इस प्रकार की पवित्र भावना का स्त्रोत परमात्मा द्वारा दिया गया वेदज्ञान ही हैं। यदि हम गहराई से चिन्तन करें तो ये अलग—अलग मत—मजहब और सम्प्रदाय ही बैर—वैमनस्य का प्रमुख कारण हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद हमें जोड़ने की बात करता है और सम्प्रदायवाद तोड़ने की बात करता है क्योंकि आतंकवादियों की दृष्टि में अपने मत से परे कोई सत्य हैं ही नहीं। वे अपनी—अपनी संकुचित विचारधारा में ही स्वयं बंधे हुए हैं तथा औरों को भी बांधने का प्रयास करते हैं। हम केवल इस्लाम मत की ही चर्चा करें। इनके अनुसार कुरान खुदा के द्वारा दिया गया ज्ञान है। हालांकि यदि निष्पक्ष से हम कुरान को देखें तो उसमें सृष्टि नियम के विरुद्ध, परमात्मा के गुण—धर्म स्वभाव के विपरीत ऐसे—ऐसे गपोड़े भरे पड़े हैं जो वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। मगर क्योंकि मतवादियों को तो जैसे—तैसे अपनी बात मनवानी ही होती हैं अतः कुरान में ही आदेश दे दिया गया कि जो कुरान को खुदा की पुस्तक नहीं मानते हैं तथा मुहम्मद साहब को पैगम्बर नहीं मानते हैं तथा उसकी शरण में नहीं आते हैं वे सब काफ़िर हैं। केवल इतना ही कहा गया होता तो गनीमत थी मगर आगे कुरान का आदेश हे कि काफिरों पर कभी विश्वास न करें। वे चाहे कितने ही अच्छे हों। उन्हें मारो, उन पर इतने जुल्म करो कि वे तुम्हारी सख्ती को महसूस करें। उनकी औरतों और बच्चों को मारो, उनकी सम्पत्ति को लूटो। सोचने की बात यह हे कि क्या परमात्मा इस प्रकार के अमानवीय आदेश दे सकता है, लेकिन कुरान के इस आदेश का अनुपालन करने के लिए मुसलमानों को आदेश दिया गया है कि यह सब तुम खुदा के नाम पर करो। ऐसा करोगे तो परमात्मा तुमसे प्रसन्न होगा तथा तुम्हें जन्नत मिलेगी और यदि काफिरों पर अमानवीय अत्याचार नहीं करोगे तो खुदा तुमसे नाराज हो जायेगा और दोजख में यातनाएं सहने के लिए प्रेरित करेगा। अब जिस काम के लिए खुदा की ओर से ही इस प्रकार का आदेश तज़बीन कर दिया गया हो, वह मज़हब सुख—शान्ति का प्रचार और प्रसार कैसे कर सकता है? यही कारण है कि आज इस्लाम अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का एक पर्याय बन चुका है। खुदा को प्रसन्न करने के लिए ही मानों ये लोग आत्मघाती दस्ते बनाकर अमेरिका में आतंक फैलाते हैं, भारत की संसद पर हमला करते हैं तो कभी हिन्दुओं के पवित्र स्थानों पर हमला करके निरपराध लोगों की हत्या करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने विश्वबन्धुत्व तथा सार्वभौमिक सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए वेद ज्ञान हमारे समक्ष रखा है जिसके कार्यान्वयन से ही बैर—वैमनस्य समाप्त हो सकता है। आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सारे विश्व को संगठित होकर अत्यधिक प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। सभी ऐसी मजहबी पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगना चाहिए जो मानवता को बांटने का प्रयास करने वाली है। ऐसा कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब हम अपने—अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर चिन्तन करें। वितेषणा, पुत्रैषणा और लोकेषणा में फंसे

हुए व्यक्ति मानवता को जोड़ने का काम नहीं कर सकते हें अतः आध्यामिकता के मार्ग पर चलकर पहले स्वयं के अन्तःकरण को पवित्र बनाना निन्तात अनिवार्य है। आध्यात्मिक होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम समाज और राष्ट्र की उन्नति का चिन्तन न करें। यह आध्यात्मिक होना ही नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक क्रान्ति ही परोपकार के लिए स्वयं के जीवन तक को उत्सर्ग करने की भावना रखती है। हमारे जितने भी महापुरूष तथा क्रान्तिकारी हुए हैं उन्होंने राष्ट्र और समान को सही दिशा देने का प्रयास किया और वे सब आध्यात्मिकता से परिपूर्ण थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द सरस्वती, भगतसिंह, बिस्मिल, आजाद ओर सुभाष चन्द्र बोस आदि लोग इसलिए समाज में इतना बड़ा कार्य कर गए क्योंकि ये अपने–अपने स्वार्थों तथा संकुचित विचारधारा में लिप्त नहीं थे बल्कि आध्यात्मिकता की ऊँचाईयां को छूकर इन्होंने अधर्म और धर्म को सही रूप में पहचानकर धर्म के पक्ष में रहकर अपनी–अपनी प्रतिभा और शान्ति के आधार पर अधर्म का नाश किया और धर्म का उत्थान किया। स्मरण रहे आर्य समाज तथा वेद की दृष्टि में धर्म कोई मत, मजहब, या सम्प्रदाय और जाति नहीं बल्कि मानवमूल्यों की उच्चता ही धर्म हैं। उन्हीं की स्थापना करने से श्रेष्ठता का सृजन हो सकता है। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति जिनका आचरण ही धर्म हो, वे देश व समाज का चतुर्दिश विकास कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। आज इस बात की परम आवश्यकता हैं कि धर्म की इस परिभाषा को कार्यान्वित किया जाए। इसी से आपसी बैर–विरोध की भावना निरस्त हो सकती हैं। आध्यात्मिकता के उच्चादर्श ही व्यक्ति की कसौटी होनी चाहिए न कि कोई मत या जाति विशेष। ऐसा ज्ञान केवल परमात्मा द्वारा दिए गए वेद में ही हमें दृष्टिगत होता है इसलिए वेद के आदर्शों को समग्र रूप में आत्मसात् करना अपेक्षित हैं।

## महत्वपूर्ण सूचना

पवमान पत्रिका के सभी सम्मानीय पाठकों को सादर सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड द्वारा अपनी सभी सहयोगी आर्य संस्थाओं, गुरुकुलों, आश्रमों एवं आर्य समाजों के सहयोग से पूरे उत्तराखण्ड प्रदेश में मद्यनिषेध कार्यक्रम चलाने का निर्णय लिया गया है। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जनपद स्तर पर धरना प्रदर्शन एवं नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से जनसाधारण को मद्यपान से होने वाली बुराईयों के प्रति जागरुक करने का प्रयास किया जायेगा। इसके साथ ही चेतना रैली के द्वारा माननीय मुख्यमंत्री जी एवं अन्य जनप्रतिनिधियों को उत्तराखण्ड राज्य में पूर्ण मद्यनिषेध लागू करने के लिए ज्ञापन दिये जायेंगे। नवम्बर 2016 में देहरादून शहर के अन्दर एक दिन का एक वृद्ध कार्यक्रम आयोजित किया जायेगा जिसमें मद्य निषेध के क्षेत्र में कार्य कर रही एनजीओज तथा महिला मंगल दल के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया जायेगा। इस अवसर पर हमें ऐसे कुशल वक्ताओं, चिकित्सकों एवं इस क्षेत्र से सम्बद्ध रहे वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन की आवश्यकता है जो हमें नवम्बर 2016 में होने वाले कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में सहयोग कर सकें। हमें ऐसे उद्योगपतियों के सहयोग की भी अपेक्षा है जो इस कार्यक्रम को अपने संसाधनों से प्रायोजित (Sponsor) करने में सहयोग कर सकें। **सम्पर्क सूत्र :** गोविन्द सिंह भण्डारी–9412930200, प्रेम प्रकाश शर्मा–9412051586, शत्रुघ्न कुमार मौर्य–9412938663, महेन्द्र सिंह चौहान–9719362181

# फकीरी नुस्खे

1. **मधुमक्खी काटने की दवा**–आक (मदार)–के दूध में लौंग, गोल मिर्च, शुद्ध कडुवा तेल या सरसों के दाने रगड़कर तेल में फेंटकर लगाये पीड़ा समाप्त हो जायेगी।

2. **पेट में दर्द**– आकाशबवर पीसकर थोड़ा शुद्ध घी एक चम्मच जल के साथ पिला दिया जाय, दर्द मिट जायेगा।

3. **जहर खा लेने पर**– अकोल्हाकी छाल थोड़ा–सा पीसकर पिला दिया जाये तो कैसा भी जहर हो उसे उल्टी द्वारा बाहर निकाल देता है। यह दवा रामबाण है।

4. **वातरोग या गठिया**–हरसिंगार की चार या पांच पत्ती पीसकर एक गिलास पानी से सुबह–शाम दो या तीन सप्ताह पीने से रोग समाप्त हो जायेगा।

5. **कान का दर्द**–पीपल के पत्ते का रस कान में डालने से कान का दर्द, बहना तथा बहरापन चला जाता है।

6. **चौथिया, जड़ैया बुखार**– कपास के पत्तों को सूँघने से चौथिया या जड़ैया बुखार जड़ से छूट जायेगा।

7. **सिरदर्द या सर्दी**–पीपल के चार कोमल पत्तों का रस चूसिये। रस चूसते–चूसते दर्द या सर्दी जुकाम मिट जायेगा।

8. **खाँसी, दमा**–पीपल के सूखे पत्तों को कूटकर कपड़छान कर ले तथा एक बड़ा चम्मच शुद्ध मधु 11 ग्राम, 664 मिलीग्राम में, पीपल–पत्तेका चूर्ण 25 ग्राम मिलाकार चाटने से खाँसी, दमा दो सप्ताह में जड़ से समाप्त हो जायेगा।

9. **पीपल के फलके उपयोग**– पीपल के फल को सुखकर कूटकर कपड़छान कर ले। 250 ग्राम रोजाना गाय के दूध में मिलाकर सेवन करने से वह बल–वीर्य को बढ़ाता है, ताकत पैदा करता है और स्त्रियों के प्रसूत, प्रदर मासिक धर्म की गड़बड़ियों को भी यह दूर कर देता है।

10. **हैजा**– अकवन (आक)–को कुछ लोग मदार भी कहते है। अकवनकी जड 100 मिलीग्राम, इतनी ही गोल मिर्च मिलकार पीस लें और मटर के दाने के बराबर गोली बना लें। जिसे हैजा (कॉलरा) हो गया हो, उसे एक बार दो गोली खिलाये, हैजा तुरंत बंद हो जायेगा।

11. **गैस (घटसर्प)**–सफेद अकवन के फूल सुखाकर तवेपर भून लें तथा चार फूल हथेली पर रगड़कर शहद मिलाये। 4 या 6 बूँद उस मरीज को चटायें, जिसे गैस (घटसर्प)– की बीमारी हो, इससे ठीक हो जाती है। इस रोग में सीने में उठा दर्द साँप की आकृति में ऊपर उठकर कण्ठपर जाकर रूक जाता है। ऐसे रोगी की श्वास घुटने लगती है। जब कण्ठ पर श्वास रूक जाती है, उसी समय इसे देना चांहिये, कण्ठ खुल जायेगा। पंद्रह दिन तीन समय देने से बिल्कुल आराम हो जाता है।

12. **सृजाक**–अकवन (मदार)–की जड़ 11 ग्राम 664 मिलीग्राम, गोल मिर्च 25 ग्राम पीसकर गोली बनाये। एक–एक गोली रोजाना सुबह खाकर पानी पी ले तो गरमी, सूज़ाक जड़ से समाप्त हो जाता है।

13. **मलेरिया**–तुलसी के सात पत्ते और गोल मिर्च के सात दाने एक साथ चबाने से पाँच बार में मलेरिया जड़ से चला जाता है। बुखार शीघ्र उतर जाता है आराम हो जाता है।

14. **आँख की लाली**– अकवन का दूध पैर के अँगूठे के नखपर लगाने से आँख की लाली फौरन साफ हो जाती है, परंतु ध्यान रहे आँखों में न लगने पाये।

15. **तुलसी के अदभुत गुण**–तुलसी के पत्ते और इसके बराबर गोल मिर्च मिलाकर पीस ले, मटर बराबर गोली बना लें, एक गोली दाँत पर रगड़ने से दाँत दर्द, पायरिया आदि

में फौरन आराम होगा। दस रोज में दाँत से खून आना, मुख की दुर्गन्ध इत्यादि जड़ से चली जाती है। यह गोली बुखार में खाने से रामबाण का काम करती है। बुखार उतर जाता है और तुरंत आराम होता है।

16. **शक्तिवर्धन तथा भूख–प्यास लगना**– चरचिरी (अपामार्ग) का बीज 100 ग्राम रगड़कर साफ कर ले और गाय का दूध 250 ग्राम या एक किलो लेकर उसमें मिलाकर उसे गरम करे, जब दूध गाढ़ा हो जाये तब सेवन करे। दस रोज सेवन करने पर ताकत बढ़ेगी, भूख प्यास भी लगेगी।

**17. बवासीर के अक्सीर नुस्खे**–

(क) रसौत 11 ग्राम, 664 मिलीग्राम, गेंदे का फूल 11 ग्राम, 664 मिलग्राम, मुनक्का 50 ग्राम–तीनों को पीसकर सात गोली बना ले, एक गोली रोजाना सुबह पानी के साथ सेवन करें, जड़ से बवासीर चली जायेगी।

(ख) निरी (हरसिंगार) का बीज 57 ग्राम 316 मिलीग्राम कुकरौंधा के रसमें पीस ले। मटर बराबर नौसादर मिलाकर दस गोली बना लें। एक गोली नित्य 316 मिलीग्राम गुलाबजल के साथ निगल जाये।

(ग) **सूरन (जमींकन्द)**–को ओल भी कहते है, इसे धीमा भूनकर खाने से खूनी बवासीर दूर हो जाती है।

(घ) तिल का चूर्ण मक्खन में मिलाकर खाने से बवासीर दूर हो जाती है।

(ड़) मदार (आक)–का पत्ता तथा सहिजन की जड़ की छाल–इन दोनों को एक साथ पीसकर लेप करने से खूनी बवासीर दूर हो जाती है।

18. **खुजली दाद**– खुजली, दाद, घाव, एग्ज़िमा आदि चर्म रोगों में गेहूँ को जलाकर राख बना लें। इसे कपड़े से छानकर तेल (सरसों पीला) में भिगोकर लगाये तो खुजली आदि में तुरंत आराम हो जायेगा।

**19. बिच्छू का काटना**–

(क) बिच्छू ने जहाँ काटा हो, वहाँ दूधी घास रगड़ देने से फौरन आराम हो जाता है।

(ख) मूली को पीसकर बिच्छू के काटे स्थान पर लगाने से विष दूर हो जाता है।

(ग) सिन्धुवार के कोंपल को पीसकर बिच्छू के डंक मारने वाले स्थान पर लगाने से आराम हो जाता है।

20. **गठिया–दर्द**–सिन्धुवार (सैंधाकचरी) के पत्ते एक किलो पानी में खूब गरम कर दें। उस गरम जल से धोने से गठिया, कनकनी गाँठ का दर्द तथा सूजन अच्छा हो जाता है।

21. **बुखार**– सिन्धुवार की जड़ हाथ में बाँधने से बुखार उतर जाता है।

22. **त्रिफला के उपयोग**–50 ग्राम त्रिफला (ऑवला, हर्रे, बहेड़ा) का चूर्ण, शुद्ध शहद और तिल के तेल में मिलाकर चाटने से खाँसी, दमा, बुखार, धातुक्षीणता, पेट के समस्त रोग समाप्त हो जाते हैं। ऋषियों ने यहाँ तक कहा है कि इसे सुबह–शाम सेवन करने से शरीर का कायापटल हो जाता है। सूज़ाक, बवासीर में पूरा आराम मिलता है। स्त्रियों का प्रदररोग, प्रसूत तथा मासिक की गड़बड़ी जड़ से चली जाती है।

23. **खाँसी सर्दी–बाक्स (अडूसा)**–का रस 11 ग्राम 664 मिलीग्राम, शहद 11 ग्राम 664 मिलीग्राम के साथ सेवन करें तो यह खाँसी, सर्दी, पुराने बुखार आदि को जड़ से समाप्त कर देता हैं।

24. **आँख की फूली, धुँधलापन**–गदहपूरना का रस आँख में डालने से आँख की फूली, माणी, धुँधलापन आदि रोग दूर हो जाता हैं।

25. **गर्भ न गिरना**– अशोक के बीज का एक दाना लेकर सिलपर घिसकर बछड़े वाली गाय के दूध में मिलाकर स्त्री को देने से गर्भपात रूक जाता है स्त्री पुत्रवती हो जाती है।

# मधुर पारिवारिक संबंध एवं श्रेष्ठ सन्तान निर्माण कार्यशाला सम्पन्न

**–मनमोहन कुमार आर्य**

26 जून, 2016 को देहरादून की जनपदीय आर्य प्रतिनिधि सभा, देहरादून द्वारा देहरादून नगर की समस्त आर्यसमाजों, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड एवं इसकी अन्य जनपदों की सभाओं, गुरुकुल पौंधा, द्रोणस्थली कन्या गुरुकुल सहित वैदिक साधन आश्रम तपोवन नालापानी देहरादून के सहयोग से नगर निगम, देहरादून के विशाल सभागार में **'मधुर पारिवारिक सम्बन्ध एवं श्रेष्ठ सन्तान निर्माण कार्यशाला'** पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न हुई। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि श्री अरुण दण्ड, निदेशक, यूनीवर्सिटी आफ पेट्रोलियम एंड एनर्जी स्टडीज, देहरादून थे तथा अध्यक्षता श्री सुखवीर सिंह वर्मा ने की। कार्यक्रम पूर्वान्ह 10.00 बजे से 2.00 बजे तक चला जिसमें श्रोताओं की अन्तिम समय तक रूचि बनी रही। कार्यक्रम का संचालन गुरुकुल पौंधा के आचार्य डा. धनंजय आर्य ने प्रभावशाली रूप में किया। कार्यक्रम के आरम्भ में श्रीमती मीनाक्षी पंवार के दो भजन हुए। आर्य उप–प्रतिनिधि सभा, देहरादून के प्रधान श्री शत्रुघ्न मौर्य ने स्वागत भाषण दिया। कार्यशाला में मुख्य अधिकारिक सम्बोधन आर्य जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य आशीष दर्शनाचार्य जी ने दिया।

आचार्य आशीष दशर्नाचार्य ने सम्बोधन से पूर्व श्रोताओं को कुछ लम्बी व गहरी सांसे दिलाकर उनके मन को स्थिर व एकाग्र कराया और ईश्वर प्रार्थना करते हुए कहा कि परमेश्वर हमारे पास उपस्थित है। हम ईश्वर से भावात्मक संबंध स्थापित करें। ईश्वर को अपने भीतर विद्यमान जान व मानकर हम पूरी सजगता को स्थापित करें। कविता में प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा **'हे कीर्तिमय आओ, हे ज्योतिर्मय आओ। युगों–युगों से बुझी हुई है जीवन ज्योति हमारी। सूर्य चन्द्र तारे नक्षत्र तेरे ही अनुगामी, मेरी सूनी कुटिया में प्रभु ज्ञान का दीप जलाओ। हे ज्योतिर्मय आओ।'** इसके बाद आपने सामवेद के प्रथम मन्त्र **'अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये। नि होता सत्सि बर्हिशि।।'** का पाठ किया। आचार्य आशीष जी ने प्रश्न किया कि दो व्यक्ति के संबंध मधुर कैसे बनें? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हम परिवार तक ही सीमित न होकर समाज को भी इसमें सम्मिलित करें। राष्ट्र को भी इसमें सम्मिलित कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस विषय को मनोविज्ञान व कार्य–कारण सिद्धान्त आदि से समझने का प्रयत्न करें।

आचार्य जी ने प्रश्न किया कि लोगों के बीच सम्बन्ध कब उत्पन्न होता है? उन्होंने कहा कि जब कोई व्यक्ति मुझे अपना लगता है तो उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। हममें अपनत्व का भाव तब आता है जब हम सामने वाले व्यक्ति को अपने जीवन से जुड़ा हुआ देख पाते हैं। आचार्य जी ने नदी का उदाहरण देकर कहा कि जब हम जल में अपने प्राणों की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं, उस समय यदि हमें नदी में कोई दूसरा व्यक्ति देख लें जो हमारे समान ही संघर्ष कर रहा हो तो उसके प्रति हमारे अन्दर अपनत्व की भावना उत्पन्न होती है। अपने समान दूसरों को जीवन में संघर्ष करते हुए देखकर हमारे अन्दर उनके प्रति अपनत्व का भाव पैदा होता है। इस प्रकार उत्पन्न अपनत्व के भाव से ही मधुर सम्बन्धों का आरम्भ होता है। मधुर सम्बन्धों के लिए हमें अपने ऊपर

फोकस करना होता है। उन्होंने कहा कि क्या हम देने व पाने में एकाग्र हैं, इसका उत्तर हमें अपने अन्दर ढूढंना होगा। आचार्य जी ने घर पर आये एक अतिथि का उदाहरण दिया और कहा कि ऐसी स्थिति में हमें अपनी मानसिक स्थिति का आंकलन करना चाहिये। उन्होंने पूछा कि हम अतिथि को कुछ देना चाहते हैं या उससे पाना चाहते हैं? उन्होंने कहा कि घर में अतिथि के आने पर हमारा फोकस अपने व्यवहार पर केन्द्रित होता है। हमें इस बात की चिन्ता होती है कि हमारा व्यवहार अच्छे से अच्छा हो। जब अतिथि हमारे घर पर होता है तो हमारा फोकस घर से बाहर शिफ्ट नहीं होता। उन्होंने कहा कि परिस्थिति बदलने पर हमारा सोचने का ढंग बदल जाता है। घर में आये अतिथि को हम प्रमुखता देते हैं। उसे सम्मान देते हैं। घर से बाहर निकलने पर हमारी मानसिक स्थिति को क्या हो जाता है। आचार्य आशीष जी ने कहा कि देने वाला व्यक्ति जीवन में अधिक सुखी होता है। उन्होंने कहा कि इसे गहराई से समझने की कोशिश करें।

आचार्य आशीष जी ने कहा कि हमारा मांगने का स्वभाव होता है तो हमें दूसरों के आगे झुकना पड़ता है। ऐसा करके हम गुलामी की जंजीरों में स्वयं को जकड़ने वाला बनते हैं। मांगने में सुख की चाह व अनुकूलता छुपी होती है। **उन्होंने पूछा की चाह बन्धन में जकड़ेगी या स्वतन्त्र बनायेगी?** यदि मैं अपना सुख अपने सामने वाले को सौंप रहा हूं तो सोचिए कि कहीं मैं अपने आपको गुलाम तो नहीं बना रहा हूं। दूसरों से सुख की मांग करने पर हम परतन्त्र हो जाते हैं। हम जिससे चाह करते हैं वह अच्छा व्यवहार भी कर सकता है। उससे हमारी इच्छायें पूरी हों भी सकती हैं और नहीं भी। वह हमारे प्रति शिष्टता भी कर सकता है और नहीं भी। उसका व्यवहार समान रहेगा, इसकी कोई गारंटी नहीं। यह बात असम्भव है कि सामने वाला व्यक्ति हमारे प्रति हमेशा अच्छा व्यवहार करेगा।

आचार्य जी ने कहा कि हमारी इच्छायें कई प्रकार की होती हैं। सम्भव कोटि की इच्छायें पूरी हो सकती हैं। मधुर सम्बन्ध अन्दर की मधुरता व मन की शान्ति पर टिकता है। **यदि हम स्वयं के प्रति मधुर नहीं होंगे तो हम दूसरों के प्रति भी मधुर नहीं हो सकते।** हम अपने अन्दर जितना शान्त होंगे उतना हमारा व्यवहार मधुर होगा। उन्होंने कहा कि मुझे अपनी शान्ति को अपने हाथ में रखना है। यदि दूसरों से अपेक्षा करेंगे तो हम गुलाम बन सकते हैं। दूसरों से अपेक्षा करने व निर्भर होने से हमारी मधुरता समाप्त होती जाती है। जब हम अपने अन्दर शान्त व मधुर होते हैं तब आगे की श्रृंखला ठीक होती है। उन्होंने प्रश्न किया कि जीवन है क्या? इसका उत्तर उन्होंने दिया कि जीवन में उतार व चढ़ाव अर्थात् Ups and downs का होना ही जीवन है। आचार्य जी ने प्रातःकाल उठकर यह संकल्प लेने के लिए कहा कि आज हम शान्त रहेंगे। अपने सामने वाले पर फोकस नहीं करेंगे। उन्होंने कहा कि जब आप दूसरों से व्यवहार करें तो आपका फोकस अपने व्यवहार पर होना चाहिये। ऐसा करने से हमारे अन्दर सकारात्मक परिवर्तन आना आरम्भ हो जाता है। उन्होंने कहा कि हमें दूसरों से व्यवहार करते हुए उन पर फोकस नहीं करना चाहिये। हमें यह ध्यान देना चाहिये कि कहीं हम दूसरे की कमियों पर तो फोकस नहीं कर रहे हैं। सम्बन्धों में लम्बे समय तक मधुरता तभी सम्भव है जब कि मेरे मन में शान्ति हो। उन्होंने कहा कि यदि हम नकारात्मक बातों पर फोकस करेंगे तो हमारे मन में भी उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इससे अशान्ति आयेगी। उन्होंने कहा कि अशान्ति का कारण कोई दूसरा व्यक्ति नहीं अपितु हम स्वयं होते हैं परन्तु हमारी उंगली सामने वाले पर ही उठती है। यदि मैं अच्छी बातों की प्रशंसा के स्थान पर बुरी बातों पर ध्यान दूंगा तो हमारे स्वभाव में अशान्ति व चिड़चिड़ापन आयेगा। हममें जब तक दूसरों के प्रति अपनत्व पैदा नहीं होगा तब तक हमारे संबंधों में मधुरता नहीं आयेगी। हमें अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ अपना फोकस

सकारात्मक रखना होगा। उन्होंने कहा कि हममें व दूसरों में शत प्रतिशत सकारात्मकता व पूर्ण आदर्श स्थिति सम्भव नहीं है। यदि परिवार के सदस्यों के प्रति हमारा फोकस पाजिटिव होगा तो हम साथ साथ रह सकेंगे अन्यथा हमें अलग अलग होना पड़ सकता है।

आचार्य जी ने कहा कि यदि हम अपने मानसिक स्तर पर सजग होंगे तो हमें सफलता प्राप्त होगी। अपने संबंधों के प्रति हमें अपना दायित्व निभाना है। हमें संबंधों की सूक्ष्म बातों को समझना व पहचानना है। उन्होंने कहा कि प्रसन्न रहना एक आदत है। इस आदत को हमें जल्दी से अपने जीवन में ले आना चाहिये। हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी कि हम दुःख व कष्टों में भी शान्त रहेंगे। ऐसा करना हमारे लिए सम्भव है। उन्होंने आगे कहा कि जब तक हम अपने स्वभाव को बदल कर उसे हर हाल में सुखी नहीं रखेंगे तब तक हम परमानन्द की कल्पना नहीं कर सकते। मोक्ष से पूर्व जीवन मुक्त बनाना होता है। एक महत्वपूर्ण बात आचार्य जी ने यह भी कही कि जो मनुष्य जीवन में दुःखों से मुक्त नहीं हुआ वह मर कर भी मुक्त नहीं हो सकता। आचार्य जी ने कहा कि कुछ लोगों को हम सहन नहीं कर पाते। उन्हें सहन करने में हमारे अन्दर कमी है। वही हमारी अशान्ति के निमित्त वा कारण बनते हैं। उनके सम्पर्क से मैं अपना सन्तुलन खो बैठता हूं। उससे स्वयं को असहज महसूस करता हूं। इस परिस्थिति को भी सकारात्मक रूप में देखा जा सकता है। उन्होंने कहा कि जिस व्यक्ति ने अपने मानसिक स्तर को अनुकूल व प्रतिकूल स्थितियों में सहन करने योग्य बना रखा है, वह व्यक्ति प्रतिकूलताओं में भी शान्त व प्रसन्न रह सकता है। आचार्य जी ने अपनी मानसिकता को बलवान बनाने को कहा। उन्होंने कहा कि घर में जब बातें करें तो अपनी आवाज को कम रखें। जोर से न बोलें। आचार्य जी ने कहा कि सन्तान का निर्माण भी हम उसी सीमा तक कर सकते जहां तक कि हम पहुंचे होते हैं। सन्तान को स्वयं से अधिक योग्य बनाने के लिए अच्छे अध्यापक या समाज के अधिक ज्ञानी लोगों की आवश्यकता होती है। श्रेष्ठ सन्तान का निर्माण करने के लिए हमें श्रेष्ठ जीवन पद्धति से जुड़ना चाहिये। उन्होंने कहा कि बच्चे सुन कर कम तथा देख कर अधिक सीखते हैं। आचार्य जी ने ईश्वर को जानकर उससे जुड़ने को कहा और योगाभ्यास की सलाह दी।

आचार्य जी ने बच्चों में तुलना किये जाने की मनोविज्ञान के आधार पर समालोचना की। उन्होंने कहा बच्चों की परस्पर तुलना करते हुए माता–पिता की भावना तो अच्छी होती है परन्तु उन्हें मनोविज्ञान पर आधारित व्यवहार करना नहीं आता। बच्चों की परस्पर तुलना न कर उनको अच्छे कार्य करने की प्रेरणा करनी चाहिये। श्रेष्ठ सन्तान निर्माण की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि दो सन्तानों की तुलना करने का अर्थ दो हृदयों में जहर घोलना होता है। जो व्यक्ति बच्चों की तुलना करता है उसकी छवि गलत बनती है। अपने बच्चों की दूसरों के साथ नकारात्मक तुलना करने से माता–पिता को बचना चाहिये। आचार्य जी ने कुछ ऐसे उदाहरण भी दिये जिसमें पिता दूसरे बच्चों की तो प्रशंसा करते हैं परन्तु अपने बच्चे वही कार्य करें तो प्रशंसा नहीं करते। उन्होंने कहा कि माता पिता को अपने बच्चों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करने के अवसर ढूंढने चाहियें जिससे बच्चों में उत्साह पैदा होगा। बच्चों की अधिक सक्रियता व हानि के कार्य करने की निन्दा न कर माता–पिता को उन्हें व्यस्त रखने के उपयोगी कार्य देने चाहिये जिससे उनकी उर्जा रूके नहीं अपितु अपनी उर्जा से वह उपयोगी कार्यों को करें। बच्चों को जिस कार्य के लिए मना किया जाता है उसका उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चे अपने कामों के लिए माता–पिता से बहुत अच्छा, ऐसा ही किया करो, इसे बनाये रखो, तुमने यह काम अच्छा किया जैसे शब्द सुनेंगे तो वह आत्मविश्वासी बनेंगे। बच्चे के जिस कार्य की प्रशंसा होगी उस कार्य को वह अधिक करेगा।

बच्चों को अच्छा कार्य करने में लगायेंगे तो वह क्रियेटर बनेगा। आचार्य जी ने कहा कि जनसंख्या की दृष्टि से हमारे देश में वैज्ञानिक बनने की दर यूरोपीय देशों की तुलना में कम है जिसका कारण माता–पिता का बच्चों के प्रति व्यवहार भी हो सकता है। आचार्य जी ने कहा कि जो बातें हम जानते हैं उनके अनुसार बच्चों के निर्माण में योगदान करें। इसके बाद आचार्य जी ने श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर दिये।

आचार्य आशीष जी के बाद आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड के यशस्वी प्रधान श्री गोविन्द सिंह भण्डारी जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि श्रोतागण आज आचार्य आशीष जी के विचारों को सुनकर अभिभूत, प्रसन्न व सन्तुष्ट दीख रहे हैं। उन्होंने कहा कि मधुर पारिवारिक सम्बन्ध बहुत आवश्यक हैं। समाज में ऐसी कार्यशालाओं की नितान्त आवश्यकता है। श्री भण्डारी ने कहा कि महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना श्रेष्ठ मनुष्य के निर्माण के लिए ही की थी। उन्होंने कहा कि विश्व को श्रेष्ठ बनाने का दायित्व आर्यसमाज का है। उन्होंने आर्यसमाज को आज भी प्रासंगिक एवं सार्थक बताया। सभागार में उपस्थित सभी लोगों से उन्होंने आर्यसमाज से जुड़ने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति आर्यसमाज से जुड़ता है वह श्रेष्ठ मनुष्य बन जाता है। इसके बाद श्री सुखवीर सिंह वर्मा जी ने अध्यक्षीय भाषण देते हुए सबका धन्यवाद किया और सबसे भविष्य की कार्यशालाओं में भी सहयोग करने को कहा। इस आयोजन के मुख्य केन्द्र बिन्दु यशस्वी आर्य नेता श्री प्रेम प्रकाश शर्मा ने अपने सम्बोधन में कहा कि समाज की परिस्थितियों को ठीक ठाक करने व समस्याओं के समाधान के लिए ही आज का विषय चुना गया था। उन्होंने कहा कि आपने जिस प्रकार ध्यान पूर्वक आचार्य जी की बातों को सुना है उससे लगता है कि आप इन समस्याओं का समाधान चाहते हैं। आचार्य जी ने आपके सम्मुख समस्या के उचित व अनुचित दोनों पक्षों को रखा है। सत्य को ग्रहण करना व उसे जीवन में ढालने से ही लाभ होगा। श्री शर्मा ने नशे व शराब को परिवार टूटने का एक कारण बताया। उन्होंने इसके विरुद्ध अभियान चलाने की जानकारी दी और गुजरात तथा बिहार की तरह सरकार से उत्तराखण्ड में शराब बन्द करने की मांग की। उन्होंने कहा कि उत्तराखण्ड देवभूमि है अतः हमारा आचार व विचार भी देवों के अनुरुप ही होना चाहिये। सभा में प्रस्ताव किया गया कि स्वामी जी के देहरादून आने पर जिस स्थान पर स्वागत किया गया था उस स्थान का नाम **''स्वामी दयानन्द चौक''** रखा जाये। करतल ध्वनि से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया। आचार्य धनंजय जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि यदि वैदिक मूल्यों के अनुसार हमारा जीवन होगा तो हमारे घर स्वर्ग बन जायेंगे। आज के कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री अरुण डण्ड ने अपने सम्बोधन में आशा प्रकट की कि आज के कार्यक्रम से युवाओं को लाभ होगा। उन्होंने कार्यशाला के विषय को महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने कहा कि समाज में अच्छाईयां फैलाना कठिन तथा बुराईयां फैलाना आसान है। उनके अनुसार हमने पाश्चात्य संस्कृति की बुराईयों को ही अधिक ग्रहण किया है जबकि उसमें अच्छाईयां भी हैं। श्री धनंजय आर्य ने बताया कि ऋषिकेश का रामझूला डॉ. अरुण डण्ड जी की देख रेख व मार्गदर्शन में बनकर तैयार हुआ है। आचार्य जी ने कहा कि आर्य संस्थाओं का यह आयोजन देहरादून में अपनी तरह का संस्था की चारदीवारी से बाहर असरदार अपूर्व आयोजन है। सारा सभागार प्रौढ़ श्रोताओं से पूरा भर गया था। विगत तीस–पैंतीस वर्षों में ऐसा सफल आयोजन देहरादून में पहली बार हुआ जिसकी सफलता का श्रेय आचार्य आशीष जी सहित डा. धनंजय आर्य, श्री प्रेम प्रकाश शर्मा जी और श्री शत्रुघ्न मौर्य सहित जिला सभा के अधिकारियों, सभी आर्यसमाजों व श्रोताओं को भी है।

**'मांगने के स्वभाव वालों को दूसरों के सामने झुकना पड़ता है जो गुलामी का प्रतीक है : आचार्य आशीष दर्शनाचार्य'**

# Saturn Series

CPU Holder

Slide out Keyboard tray

Swivel and Tiltable keyboard tray

Wire Management

All dimensions are subject to change without any prior notice because of continuous research & development. All designs shown here are proprietary: Any infringement is liable for prosecution.

**DE BONO FLEXCOM (INDIA) LTD.:** Kukreja House, 1st Floor, 46, Rani Jhanshi Road, New Delhi-110055
**Ph :** 011-23540721. 23533936 **Fax :** 23533944 **Email :** debono@debonoindia.com
**E-mail : delite@delitekom.com**

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2015-17

समाचार पत्र पंजीयन 51900/88


# MUNJAL SHOWA मुंजाल शोवा

मुंजाल शोवा लिमिटेड देश में टू व्हीलर / फोर व्हीलर उद्योग में सभी प्रमुख ओ.ई.एम. के लिए शॉक एब्जोर्बर, फ्रंट फोर्क्स, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कंवेंशनल) और गैस स्प्रिंगो का सबसे बड़ा निर्माता है। निर्मित उत्पाद, गुणवत्ता और सुरक्षा के कड़े मानों के अनुरूप होते हैं। कम्पनी के उत्पाद बाधामुक्त, आरामदेह, चिरस्थायी, विश्वसनीय और सुरक्षित यात्रा के लिए जाने जाते हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, टीएस–16949, आईएसओ 14001, ओ.एच.एस.ए.एस. 18001 और टीपीएम प्रमाणित कम्पनी है। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है।

टीपीएम प्रमाणित कम्पनी

आईएसओ / टीएस–16949–2002 प्रमाणित

आईएसओ–14001 एवं
ओएचएसएएस–18001 प्रमाणित

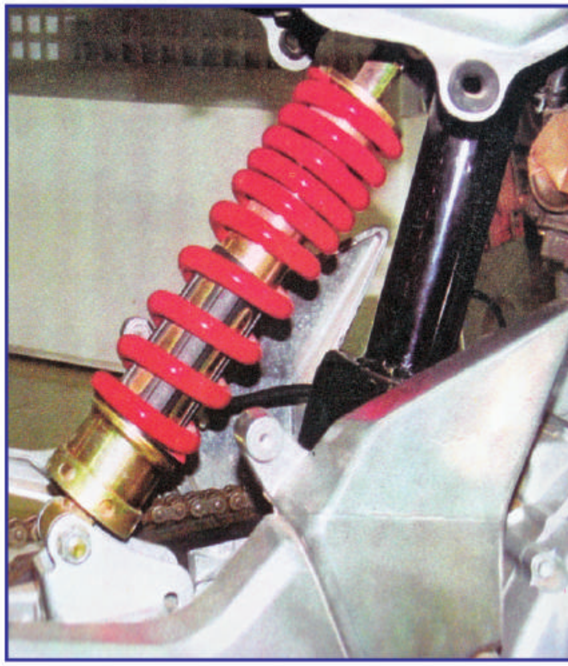

## हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

- हीरो मोटोकोर्प लिमिटेड
- मारुती सुजुकी इन्डिया लिमिटेड
- होन्डा कार्स इन्डिया लिमिटेड
- होन्डा मोटर साइकल एवं स्कूटर इन्डिया (प्र0) लिमिटेड
- इन्डिया यामहा मोटर (प्र0) लिमिटेड

## हमारा उत्पादन

स्ट्रट्स / गैस स्ट्रट्स
शॉक एब्जॉर्बर्स
फ्रन्ट फोर्कस
गैस स्प्रिंगस / विन्डो बैलेन्सर्स

## मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं0 9–11, मारुति इन्डस्ट्रीअल एरिया, गुड़गाँव। दूरभाषः 0124–2341001, 4783000, 4783100
प्लॉट नं0 26 इ एवं एफ, सेक्टर–3, मानेसर, गुड़गाँव। दूरभाषः 0124–4783000, 4783100
प्लॉट नं0 1, इन्डस्ट्रीअल पार्क–2, सालेमपुर गाँव, मेहदूद–हरिद्वार, उत्तराखण्ड दूरभाषः 0124–4783000, 4783100


वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।

संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com